॥ श्रीहरिः ॥

340

श्रीरामचिन्तन

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीराम-चिन्तन

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

भगवान् श्रीराम साक्षात् परब्रह्म हैं। निराकार, अखिलात्मन, अविनाशीतत्त्व—परमात्मा ही लोक, वेद तथा धर्मकी रक्षाके लिये मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए।

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

श्रीरामकी भुवनमोहिनी छबि चराचरको विश्रान्ति प्रदान करनेवाली और अखिल लोकके लिये मंगलकारी उनका प्राकट्य जीवमात्रके लिये परम विश्रामदायक है—

'जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम।'

जिस प्रकार पूर्ण परमेश्वर-तत्त्वका 'श्रीकृष्णावतार' लोकरंजनके लिये हुआ था, उसी प्रकार श्रीरामके रूपमें वही परमात्म-तत्त्व लोक-शिक्षणके लिये अवतरित हुआ। भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र महान्, अलौकिक, दिव्य गुणगणों और सौंदर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य तथा सामर्थ्यसे युक्त होनेके कारण उसका अनुकरण सम्भव नहीं है, पर उनकी दिव्य वाणी (श्रीमद्भगवद्गीता आदि) और कथन सर्वथा धारण करनेयोग्य और सदैव कल्याणकर हैं। किंतु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामका तो वचन तथा उपदेशोंसहित समग्र चरित्र ही सुमर्यादित, परमपावन, उच्चादर्शमय, परममंगलकारी और सदा सेवनीय होनेसे अवश्य अनुकरणीय है।

परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा इस पुस्तकमें 'श्रीराम-चिन्तन' के रूपमें पर्याप्त रोचक और प्रेरक सामग्री संयोजित की गयी है। श्रीसीतारामजीके दिव्य युगलरूपके ध्यानसहित, माता कौसल्या, सुमित्रा, श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिला आदिके अनेक उदात्त चरित्रोंपर भी मनीषी लेखकने इसमें सुन्दर प्रकाश डाला है। सरल, सुबोध भाषामें प्रभु श्रीरामकी स्वभावगत और चरित्रगत विशेषताओंसहित उनके जीवनादर्शोंका इसमें महत्त्वपूर्ण रेखांकन हुआ है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, श्रीरामचरितमानस एवं तुलसी-साहित्यकी प्रमुख रचनाओं—गीतावली, कवितावली आदिके उद्धरणोंद्वारा इसके ललित लीलाप्रसंग और भी अधिक रोचक, सरस और मर्मस्पर्शी बन गये हैं।

भगवद्भावोंसे अभिभूत करने और जीवनको उच्चताकी ओर ले जानेमें सहायक इसकी सामग्री सबके लिये हितकारी है और उपयोगी मार्ग-दर्शक सिद्ध हो सकती है। अतएव सभी प्रेमी पाठकों, जिज्ञासुओं और साधकोंको इससे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीराम-चिन्तन

भगवान् श्रीसीतारामजीका ध्यान

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥

सब लोग सावधानीके साथ एक चित्तसे श्रीअवधमें चले चलिये। बड़ा सुन्दर रमणीय श्रीअवधधाम है। चक्रवर्ती महाराज अखिल भुवनमण्डलके एकच्छत्र सम्राट् भगवान् श्रीराघवेन्द्रजीकी बड़ी रमणीय पुरी है। रामराज्यकी सब प्रकारकी शोभा, रामराज्यकी आदर्श समाज-व्यवस्था श्रीअवधमें वर्तमान है। सभी ओर सब कुछ सुशोभन है। कलुष-नाशिनी श्रीसरयूजी मन्द-मन्द वेगसे बह रही हैं। श्रीसरयूजीके तटपर श्रीराघवेन्द्रका विहार-उद्यान है। फलों और पुष्पोंसे सुसज्जित बड़ा सुन्दर बगीचा है। बगीचेमें चारों ओर बड़े सुन्दर और मनोहर पुष्पोंसे सुशोभित वृक्ष हैं। उनमें भाँति-भाँतिके पुष्प खिले हुए हैं। उनके विविध प्रकारके सौरभसे सारा उद्यान सुरभित हो रहा है। पुष्पोंपर भौंरे मँडरा रहे हैं। पुष्पोंकी रंग-बिरंगी शोभासे सभी ओर सुषमा छा रही है। फलोंके वृक्ष विविध फलोंके भारसे लदे हैं। बीचमें एक बड़ा मनोहर सरोवर है। सरोवरमें कमल खिले हुए हैं। सरोवरके भीतर जलपक्षी केलि कर रहे हैं। चारों ओर सुन्दर-सुन्दर घाट हैं। सरोवरके उत्तर ओर एक बड़ा सुन्दर कल्पवृक्ष है। सघन और फैला हुआ है। कल्पवृक्षके नीचे बहुत बढ़िया स्फटिकमणिका सिंहासन बना हुआ है। चारों ओर विविध पुष्पोंकी लताएँ बिखरी

हुई हैं। उनमें विविध भाँतिके सुन्दर-सुरभित फूल खिले हुए हैं। संध्याका समय है। बड़ा सुन्दर और सुगन्धित मन्द-मन्द समीर बह रहा है। इस मनोहर पुष्पोद्यानमें श्रीराघवेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और अखिल जगत्की जननी श्रीजानकीजी नित्य संध्याके समय पधारा करते हैं। उस समय उनके साथ कोई सेवक नहीं रहता है, केवल श्रीहनुमान्जी साथ रहते हैं।

आज भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी सारी सुषमाके साथ—समस्त शोभाओंसे सुशोभित, सौन्दर्य-माधुर्यमण्डित विश्वजननी श्रीजनकनन्दिनीके साथ पधारे हैं। भगवान् बड़ी मन्द गतिसे धीरे-धीरे सरोवरके निकट चले आते हैं। पीछे-पीछे श्रीहनुमान्जी हैं। श्रीभगवान् उत्तर तटकी ओर पधारे हैं। सुन्दर वितानवाले कल्पवृक्षके नीचे स्फटिकमणिकी मनोहर एक पीठिका है। उस स्फटिकमणिके सुन्दर सिंहासनपर बहुत ही बढ़िया और सुकोमल दूर्वाके रंगका एक गलीचा बिछा हुआ है, उसके पीछे दो तकिये लगे हुए हैं, दोनों ओर दो सुन्दर मसनद हैं। चौकीके सामने नीचेकी ओर चरण रखनेके लिये दो पादपीठ सुसज्जित हैं। उनपर दो सुन्दर कोमल गद्दी बिछी हुई हैं। सामने बायीं ओर थोड़ी दूरपर मरकतमणिकी नीची चौकीपर श्रीहनुमान्जीके लिये आसन है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ गलीचेवाले स्फटिकमणिके सिंहासनपर विराजमान हो गये हैं। श्रीहनुमान्जी सामने बैठ गये हैं। भगवान् श्रीरामके नेत्रोंकी ओर किसी आज्ञाकी प्रतीक्षामें टकटकी लगाकर देखने लगते हैं। भगवान् श्रीरामका बड़ा सुन्दर स्वरूप है। भगवान्के श्रीअंगका वर्ण नील-हरिताभ-उज्ज्वल है—'नीला, नीलेमें कुछ हरी आभा, उसपर उज्ज्वल प्रकाश।'.........**केकीकण्ठाभनीलम्**' जैसा मयूरके कण्ठकी नीलिमामें हरित आभा होती है...... चमकता रंग होता

है। इस प्रकार श्रीभगवान्‌के अंगका रंग नील-हरिताभ-उज्ज्वल है। बड़ी ही सुन्दर आभा है—दिव्य चमकता प्रकाश। भगवान्‌के श्रीअंगका वर्णन आता है—

'नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।'

नीले सुन्दर कमलके समान भगवान्‌के कोमल अंग हैं, नीलमणिके समान अत्यन्त चिकने और चमकते हुए अंग हैं, नवनीलनीरद—जलवाले बादलोंके समान सरस अंग हैं। सरसता, सुकोमलता और सुचिक्कणता बड़े प्रकाशके साथ सुशोभित हैं। एक-एक अंग इतने मनोहर, मधुर और आकर्षक हैं कि करोड़ों कामदेव एक-एक अंगपर निछावर हो रहे हैं। इनकी उपमा कही नहीं जा सकती है। शोभा अतुलनीय और निरुपम है। श्रीभगवान्‌के अंग-अंगसे मनोहर सुस्निग्ध ज्योति निकल रही है। सहस्रों, लक्षों, कोटि-कोटि सूर्यका प्रकाश है ......पर उसमें तनिक भी उत्ताप नहीं है, दाहकता नहीं है। करोड़ों चन्द्रमाकी शीतलता साथ लिये हुए है। सूर्यकी तीव्र प्रकाशमयी उष्णता और चन्द्रमाकी सुधावर्षिणी ज्योत्स्नामयी शीतलताका समन्वय—दोनोंका एक ही समय, एक ही साथ रहना कैसा होता है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। श्रीभगवान्‌के रोम-रोमसे एक प्रकारकी दिव्य ज्योति निकल रही है, जो अपनी आभासे समस्त प्रदेशको ज्योतिर्मय बनाये हुए है। भगवान्‌ने ज्योतिर्मय पीतोज्ज्वल रंगका दिव्य वस्त्र परिधान किया है, उसमें लाल पाड़ है। पाड़की लालिमा भी उज्ज्वल प्रकाशमयी है। उस वस्त्रके सुन्दर स्वर्णमय प्रकाशके भीतरसे नील-हरिताभ-अंग-ज्योति निकल-निकलकर एक विचित्र-विलक्षण रंगवाली आभा बन गयी है। नील-हरिताभ-उज्ज्वल ज्योतिके साथ-साथ भगवान्‌के स्वर्णवर्ण पीताम्बरकी पीताभ ज्योति मिलकर एक विचित्र वर्णवाली ज्योति बन गयी

है, जिसे देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है। उसको देखते ही बनता है। भगवान्‌की पीठपर गलेसे आता हुआ एक दुपट्टा लहरा रहा है, उसका स्वर्ण-अरुण वर्ण है। भगवान्‌के श्रीचरण बड़े सुन्दर, सुकोमल और अत्यन्त मनोहर हैं। श्रीभगवान्‌का वाम श्रीचरण नीचेकी पादपीठपर टिका है। दक्षिण श्रीचरणको भगवान् श्रीराघवेन्द्रने अपनी वाम जंघापर रखा है, जिसका तल जगज्जननी जानकीजीकी ओर है। भगवान्‌के श्रीचरण-तल बड़े मनोहर और सुन्दर हैं, उनमें ध्वजा, वज्र, कमल आदिकी अति सुन्दर रेखाएँ स्पष्ट हैं। चरण-तल सुकोमल अरुणाभ हैं, उनमें लाल-लाल ज्योति निकल रही है। भगवान्‌के श्रीचरणोंकी अंगुलियाँ, जो एक-से-एक छोटी अंगुलीसे अंगूठेतक उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त हो रही हैं, परम सुशोभित हैं। भगवान्‌के श्रीचरणोंसे एक ज्योति निकल रही है, चरणतलसे ज्योति निकल रही है, चरण-नखसे विद्युत्‌की तरह सुस्निग्ध मनोहर ज्योति निकल रही है, बड़ी सुन्दर प्रकाशमयी है; उसकी ज्योति-किरण जिस-जिसके समीप जाती है, उसी-उसीमें ब्रह्मज्ञानका उदय हो जाता है। यह उनकी चरण-कमल-प्रभाका सहज प्रसाद है। भगवान्‌के श्रीचरणोंमें नूपुर हैं। जाँघ और घुटने बड़े सुन्दर हैं। जाँघ बड़ी सुकोमल, बड़ी स्निग्ध, सुचिक्कण और अत्यन्त शोभामयी है। भगवान्‌की कटि अति सुन्दर है, भगवान्‌ने उसमें रत्नोंकी—दिव्य रत्नोंकी—दिव्य स्वर्णकी करधनी पहनी है, उस करधनीमें नवीन-नवीन प्रकारके छोटे-बड़े मुक्ता लटक रहे हैं, बीच-बीचमें—मुक्ताओंके बीचमें मधुर ध्वनि करनेवाली घुँघुरियाँ लगी हैं। भगवान्‌का उदरदेश बड़ा सुन्दर है; गम्भीर नाभि है, उदरमें तीन रेखाएँ हैं। भगवान्‌का वक्षःस्थल बड़ा चौड़ा है, विशाल है। वक्षःस्थलमें बायीं ओर भृगुलताका चिह्न है, दाहिनी ओर पीत-केशर-वर्णकी मनोहर

रेखा है—श्रीवत्सका चिह्न है। भगवान्के विशाल वक्ष:स्थलपर अनेक प्रकारके आभूषण सुशोभित हैं, गलेमें पहनी हुई रत्नमाला है, मुक्तामणिके हार हैं, कौस्तुभमणि है। राजोद्यानके सुन्दर-सुन्दर विचित्र पुष्पोंकी माला है, पुष्पोंका हार है, जो सारे वक्ष:स्थलको आच्छादित करते हुए नाभिदेशतक लटक रहा है। कटितटतक नीचे पुष्पहारसे सुगन्ध निकल रही है, उस पुष्पहारपर भ्रमर मँडराते हैं, मधुर गुंजार कर रहे हैं। भगवान्के कंधे बड़े मजबूत······सुदृढ़ बड़े ऊँचे हैं—केहरिकंध—सिंहके समान कंधे हैं। भगवान्की विशाल बाहु हैं, आजानुबाहु हैं, भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी हैं। ऊपर मोटी—हाथीकी सूँडकी तरह, नीचे पतली हैं। इतनी सुडौल और सुन्दर हैं कि देखते ही चित्त मुग्ध हो जाता है। वे भुजाएँ सारे जगत्की रक्षाके लिये, साधु-रक्षा और असाधुके विनाशके लिये नित्य प्रस्तुत हैं। विशाल बाहुमें बाजूबंद हैं, उनमें नीलम, पन्ना और हीरे जड़े हुए हैं। उन दोनों बाजूबंदोंके बीचमें एक-एक लड़ लटक रही हैं, लड़में बड़े सुन्दर महामूल्यवान् रत्न जड़े हुए हैं। भगवान्के पहुँचोंमें रत्नोंके कड़े हैं, उनसे ज्योति निकल रही है। भगवान्के करकमलोंकी अंगुलियोंमें रत्नोंकी अंगूठियाँ सुशोभित हैं, जो एक-से विचित्र हैं। भगवान्के श्रीअंगका वर्ण नील-हरिताभ-उज्ज्वल है, पीताम्बरका वर्ण स्वर्ण-शुभ्र-उज्ज्वल है। भगवान्के विविध आभूषणोंके भाँति-भाँतिके रत्न अलग-अलग वर्णोंकी आभा बिखेर रहे हैं, भगवान्के चारों ओर मिलकर विचित्र ज्योति छिटक रही है, विलक्षण शोभा हो रही है, मनुष्य न तो कुछ कह सकता है, न वर्णन कर सकता है। कम्बुकण्ठ है—गलेमें रेखाएँ हैं। भगवान्की बड़ी सुन्दर ठोड़ी है। अधरोष्ठ अरुण वर्णके हैं, मनोहर स्वाभाविक मन्द-मन्द उनकी मुसकान है। मन्द हास्य सबको

विमोहित कर रहा है। दन्तपंक्ति बड़ी ही सुन्दर है, मानो हीरे चमक रहे हैं, उज्ज्वलता है, ज्योति निकल रही है और अरुण अधरोष्ठपर पड़कर विचित्र शोभा उत्पन्न कर रही है। भगवान्‌के सुन्दर सुचिक्कण कपोल हैं। उनकी नुकीली नासिका है। भगवान्‌के दोनों कान बड़े मनोहर हैं, उनमें मछलीकी आकृतिके बड़े सुन्दर रत्नोंके कुण्डल चमचमा रहे हैं। भगवान्‌के नेत्र बहुत बड़े हैं, बहुत विशाल हैं। भगवान्‌के नेत्रोंसे कृपा, शान्ति और आनन्दकी धारा अनवरत निकल रही है। भगवान्‌की सुन्दर नेत्र-ज्योति है। मनोहर टेढ़ी भृकुटि है, जो मुनियोंके मनको हर लेती है। जिन्होंने एक बार दर्शन किया, वे सारे साधन भूलकर, जीवन भूलकर भगवान्‌के श्रीचरण-प्रान्तमें निरन्तर निवास करनेका मनोरथ करते हैं। भगवान्‌का विशाल ललाट है, उसपर तिलक सुशोभित है, दोनों ओर श्वेत रेखा है और बीचमें लाल रेखा है, इस प्रकार भगवान्‌के ललाटपर तिलक है। उनका विशाल भाल है, मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश हैं, मानो अगणित भ्रमर मँडरा रहे हैं। भगवान्‌की मनोहर अलकावली मुनियोंके मनको हरनेवाली है। उनके मस्तकपर सुन्दर रत्नोज्ज्वल किरीट है, इतना चमकता है, इतना बढ़िया है, उसमें इतने रत्न जड़े हैं कि उसकी शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता, इतना हलका और पुष्प-सा कोमल है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। भगवान्‌के वस्त्र-आभूषण—सब-के-सब दिव्य हैं, चेतन हैं। भगवान् श्रीराघवेन्द्रके दाहिने कंधेपर धनुष है, बायें हाथमें बाण सुशोभित है, पीछे कटिमें बाणोंका भाथा बँधा हुआ है। भगवान् दाहिने हाथमें सुन्दर पुष्प लिये हुए हैं, रक्त-कमलका सुन्दर सुशोभित पुष्प है—बड़ा मधुर सुगन्धयुक्त, छोटा-सा अनेक दलोंका कमल है, उसकी नालको पकड़े घुमा रहे हैं। इस प्रकार

श्रीराघवेन्द्र कल्पवृक्षके नीचे स्फटिकमणिके सिंहासनपर हरिताभ गलीचेपर विराजमान हैं।

वाम-पार्श्वमें श्रीजनकनन्दिनीजी विराजमान हैं। उनके दोनों अति कोमल श्रीचरणकमल नीचेकी पादपीठपर विराजित हैं। उनका पवित्र सुन्दर स्वर्णोज्ज्वल वर्ण है, सोनेके समान वदनकी आभा है पर सोनेकी भाँति कठोर नहीं है। सोनेकी भाँति चमचमाते हुए माताजीके समस्त अंग अत्यन्त सुकोमल और तेजसे युक्त हैं। करोड़ों सूर्य-चन्द्रकी शीतल प्रकाशमयी उज्ज्वल ज्योतिधारा उनके श्रीअंगसे वैसे ही निकल रही है, जैसे भगवान् श्रीरामके श्रीअंगसे। श्रीसीताजी विविध भूषणोंसे सज्जित हैं, नीलवर्णके वस्त्र हैं, वक्षःस्थलपर आभूषण हैं, बायें हाथमें पुष्प है, दाहिने हाथसे कर्णकुण्डलको सुधार रही हैं, जंघापर रखे भगवान्‌के श्रीचरणतलकी ओर जनकनन्दिनीके दिव्य नेत्र लगे हैं—पलक नहीं पड़ती है, वे श्रीरामके चरणतलके दर्शनानन्दमें विभोर हैं, दूसरी ओर उनका दृष्टिपात ही नहीं है। भगवान्‌की नील-हरिताभ-उज्ज्वल आभावाली ज्योति नित्य नयी छटा दिखा रही है। उसके साथ श्रीजनकनन्दिनीजीकी स्वर्णिम अंग-ज्योति, उनके नीलवस्त्रकी ज्योति, आभूषणोंकी ज्योति—सब मिलकर एक विचित्र वर्णवाली ज्योति चारों ओर छिटक रही है। उसकी शोभा अवर्णनीय है।

सामने बायीं ओर थोड़ी दूरपर नीचे मरकतमणिके आसनपर श्रीमारुतिजी विराजमान हैं। उनके श्रीअंगका पिंगल वर्ण है, जो उज्ज्वल आभासे युक्त है। लाल वस्त्र पहने हुए हैं, सब अंगोंपर श्रीरामनाम अंकित हैं, हृदयदेश मानो दर्पण है, उसमें स्फटिकमणिके सिंहासनपर विराजमान श्रीराम-जानकी प्रतिबिम्बित हैं। उनके नेत्रोंसे अविरत प्रेमाश्रुधारा बह रही है, टकटकी लगाये हुए हैं।

श्रीरामके नेत्रकी कृपाधारामें नहाते अपने-आपको कृतकृत्य मान रहे हैं। शरीर रोमांचित है। मुखमण्डल ज्योतिसे झलमला रहा है। शरीर आनन्दसे पुलकित है, आनन्दका अनुभव करते हुए विशेष आज्ञाकी प्रतीक्षामें वे निर्निमेष नेत्रोंसे श्रीराघवेन्द्रकी ओर निहार रहे हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम-जानकी श्रीहनुमान्‌के साथ विहार-उद्यानमें विराजमान हैं। मन्द-मन्द समीर बह रहा है, समीप ही सरयूकी मन्द धारा है, अनेक प्रकारके पक्षी चहचहा रहे हैं, वनकी शोभा अत्यन्त मनोहर हो रही है। भगवान्‌का वह स्वरूप अत्यन्त मनोहर सुन्दर है, सुषमा वर्णनातीत है। कोई भी किसी कालमें वर्णन नहीं कर सकता, देखनेसे मन मुग्ध हो जाता है। यों जब हृदयमें श्रीराम आते हैं, तब मारुतिकी तरह शीतल अश्रुधारा बहती है, शरीर रोमांचित हो जाता है। इस मनोहर ध्यानमें मग्न हो जाना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् सामने हैं, उन्हें मनके द्वारा आप देख सकते हैं। तन्मयता होनेपर ध्यान हो सकता है। बड़ा सुन्दर ध्यान है। इसमें मन लग जाय तो क्या कहना है।

भगवान् श्रीरामके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान

(१)

अयोध्यापुरीमें महाराज दशरथजीका सुन्दर महल है, जो सोनेका बना हुआ है और बहुमूल्य मणियों तथा रत्नोंसे जड़ा है। उसके मनोहर चमकते हुए आँगनमें घुटनोंके बल चलनेवाले सच्चिदानन्दघन बालरूप श्रीरामजी विराजमान हैं। उनका नील कमल, नील मेघ और नीलकान्तमणिके समान सुन्दर कोमल सरस और प्रकाशमय श्यामवर्ण है, भगवान्का स्वरूप ऐसा सुन्दर है कि उनके एक-एक अंगपर करोड़ों कामदेवकी शोभा निछावर है। भगवान्के नेत्र नील कमलके समान सुन्दर हैं, भगवान्की ठोड़ी और नासिका परम मनोहर हैं। लाल-लाल अधरोंके बीच सुन्दर दाँतोंकी पाँती अनुपम छवि दे रही है। मानो अरुणकमलके बीच अत्यन्त शुभ्रवर्ण कुन्दकलीकी दो-दो पंक्तियाँ हों। हरित आभायुक्त नीलवर्णमें अरुण आभायुक्त भगवान्के प्रकाशमय कपोल बड़े ही सुन्दर लगते हैं। सुन्दर कानोंमें स्वर्ण और रत्नोंके कुण्डल सुशोभित हैं, मस्तकपर सुन्दर तिलक है, काली घुँघराली अलकावली है। विशाल वक्षःस्थलपर मनोहर वनमाला और बघनखा सुशोभित हैं। शंखके समान तीन रेखावाले गलेमें रत्नोंके तथा मोतियोंके हार शोभा पा रहे हैं। सुन्दर करकमलोंमें कंकण धारण किये हुए हैं। पीली झगुली पहने हुए हैं। भगवान्के लाल-लाल चरणोंमें अंकुश, ध्वजा, कमल और वज्रके मनोहर चिह्न हैं तथा अत्यन्त मनोहर ध्वनि करनेवाले नूपुर शोभायमान हैं। भगवान्की कमरमें सुन्दर करधनी है, भगवान् शोभाके समुद्र हैं। भाइयोंके साथ खेल रहे हैं और दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको देख-देखकर प्रसन्न होते और किलकारी मारते हैं।

(२)

अयोध्यापुरीके परम सुन्दर राजदरबारमें सुन्दर स्वर्ण-सिंहासनपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं। उनका नीलमणि और तमाल-वृक्षके समान नेत्रोंको आनन्द देनेवाला सुन्दर श्यामवर्ण है। सुन्दरताकी सीमा हैं। करोड़ों कामदेवकी उपमा उनके सौन्दर्यसे नहीं दी जा सकती। भगवान् वाम चरणको सिंहासनपर मोड़े बैठे हैं और दाहिना चरण नीचे लटकता हुआ बहुत ही कोमल दिव्य गहरे लाल रंगके मखमली तकियेपर टिका है। भगवान्के अरुणाभ चरणतलके साथ मखमलके लाल रंगका अद्भुत मिश्रण हो रहा है। उसपर हरिताभ नीलवर्णकी मनहरनी प्रभा पड़ रही है। भगवान्के चरणतलमें वज्र, ध्वजा, अंकुश, कमल आदिके स्पष्ट चिह्न हैं। भगवान्के चरणोंमें रत्नजटित दिव्य नूपुर हैं। भगवान्के घुटने और जंघाएँ परम सुन्दर हैं। भगवान् कटितटपर सुन्दर दिव्य पीताम्बर धारण किये हैं, जो ऐसा मालूम होता है मानो मरकतमणिके ढेरपर बिजली अपने चंचल स्वभावको छोड़कर छा रही हो। पीत धोतीपर कटिमें पीत रंगका एक दुपट्टा कसा है, उसमें सुन्दर तरकस बँधा है। सुन्दर स्वर्णरत्नमयी करधनी है। भगवान्का उदार उदर तीन रेखाओंसे युक्त परम सुन्दर है। गम्भीर नाभि है। चौड़ी छातीपर भगवान् रत्नोंके और गजमुक्ताओंके हार धारण किये हुए हैं। शंखके जैसा सुन्दर गला है। गलेमें मणियोंकी, दिव्य वन-पुष्पोंकी और नवीन तुलसीदलकी लम्बी मालाएँ सुशोभित हैं। भगवान्के सिंहके-से विशाल और ऊँचे कंधे हैं। अतुलित बलवाली भुजाओंमें भाँति-भाँतिके ज्योतिर्मय कंकण पहने हैं। हाथोंमें मनोहर धनुष-बाण लिये हैं। जनेऊकी अपूर्व शोभा है, जरीकी किनारी और छोरोंसे सुशोभित दुपट्टा भगवान्के अंगपर फहरा रहा है। भगवान्के मुख-मण्डलकी

अपूर्व छटा है। परम सुन्दर ठुड्डी है। लाल-लाल अधर-ओष्ठ हैं। भगवान् जब मुसकराते हैं, तब उनके शुभ्र सुन्दर दाँत ऐसे शोभित होते हैं मानो किसी अरुण-वर्ण कमलकोशके भीतर बिजलीके रंगमें डुबोये हुए अति सुन्दर पद्मरागके शिखर विराजते हों। भगवान्के अरुणाभ गोल कपोल परम सुन्दर हैं, नासिकाकी नोक चित्तको चुरानेवाली है, नासाके बीचमें गजमुक्ताकी लटकन है। विशाल मनोहर कानोंमें स्वर्ण-रत्नमय मकराकृति कुण्डल हैं। भगवान्की बाँकी भ्रुकुटि है; शोभाशील, प्रेम और आनन्दके भंडार, अरुण कमलदलके समान उनके मनोहर नेत्र हैं, जिनसे कृपा और सुन्दरताकी आह्लादकारिणी और मोहिनी प्रकाशधारा बह रही है। भगवान्के विशाल प्रकाशमय मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र-तिलक सुशोभित है। सिरपर अत्यन्त रमणीय स्वर्ण-रत्नोंसे निर्मित तेजःपुंज परम सुन्दर मुकुट है। उसके नीचे काले घुँघराले घने केश हैं, जो कानोंतक विचित्र ढंगसे सँवारे हुए हैं। भगवान्के सारे शरीरपर चन्दनकी खोरी लगी है। भगवान्के अंग-प्रत्यंगोंमें करोड़ों कामदेवोंकी छवि छा रही है। अंगसे दिव्य सुगन्ध निकल रही है। भगवान्के वामभागमें जगज्जननी सीताजी विराजमान हैं, जो नीलवस्त्र तथा सब अंगोंमें परम उज्ज्वल आभूषण धारण किये हैं। श्रीलक्ष्मणजी, भरतजी और शत्रुघ्नजी चँवर, व्यजन और छत्रको लिये भगवान्की सेवामें खड़े हैं। श्रीचरणोंमें बैठे हुए महावीर हनुमान्जी भगवान्के नेत्रोंकी ओर अनिमेष दृष्टिसे देख रहे हैं और भगवान्के दाहिने चरणको दबा रहे हैं तथा मुनिमण्डली स्तुति कर रही है।

(३)

प्रातःकालका सुहावना समय है, वन और उपवनोंमें रंग-बिरंगे पुष्प खिल रहे हैं, बड़ा अच्छा मौसम है। अयोध्यापुरीमें

सरयूजीके पवित्र तटपर भगवान् श्रीरामजी अपने भाइयों तथा मित्रोंके साथ फाग खेल रहे हैं। भगवान् रामकी अनुपम छवि देखकर सबके हृदयमें प्रेम उमड़ रहा है। भगवान्‌का शरीर श्याम तमाल या नीलमेघके समान श्यामवर्ण है। भगवान्‌के चरणतल अरुणवर्ण हैं। उनका ऊपरका हिस्सा श्यामवर्ण है। नखोंकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके प्रकाशके समान है। भगवान्‌के चरणतलमें कमल, वज्र, ध्वजा और अंकुशादिकी रेखाएँ सुशोभित हैं। चरणोंमें मनोहर नूपुर हैं जो अपनी सुमधुर ध्वनिसे मुनियोंका मन मोह लेते हैं। सुन्दर जानु हैं; उनकी जंघाएँ मरकतमणिके खंभोंके समान सुन्दर और चिकनी हैं। कटिप्रदेशमें अति निर्मल पीताम्बर है। उसपर सोनेकी बनी हुई मणिजटित करधनी मनोहर शब्द कर रही है। प्रभुके उदर-देशमें मनोहर त्रिवली और अति सुन्दर गम्भीर नाभि है। भगवान् मनोहर रत्नोंके हार धारण किये हुए हैं; वक्षःस्थलमें भृगुलताका चिह्न उनकी ब्रह्मण्यता और क्षमाशीलताका परिचय दे रहा है। गलेमें सुगन्धित सुन्दर वनमाला है। विशाल भुजाओंमें कंकण और बाजूबंद सुशोभित हैं। भुजाएँ स्थूल, जानुपर्यन्त लम्बी और अपार बलशालिनी हैं, जो सदा भक्तोंका भय-भंजन करनेके लिये तैयार रहती हैं। भगवान्‌की ठुड्डी बड़ी ही मनोहर है। मनोहर अरुण-वर्ण होठोंके बीचमें दाँतोंकी पंक्ति ऐसी जगमगा रही है मानो अरुण कमलके बीचमें गज-मुक्ताओंकी दो मनोहर पंक्तियाँ हों। भगवान्‌के कपोल बड़े सुन्दर हैं, कानोंमें रत्न-जटित कुण्डल, मनोहर मस्तकपर तिलक और सिरपर किरीट सुशोभित है। भगवान्‌के कंधेपर पीत जनेऊ शोभित हो रहा है। भगवान्‌की भ्रुकुटि बाँकी है और चितवन भक्तोंपर कृपा करनेवाली और मुनियोंके भी मनको हरनेवाली है। भगवान्‌के समस्त शरीरसे

तेजकी धाराएँ निकल रही हैं। मस्तकके चारों ओर शुभ्र-वर्ण तेजोमण्डल है। भगवान्‌के अंग-अंगमें अतुलित शोभा छा रही है। भगवान् हाथोंमें पिचकारी लिये फाग खेल रहे हैं; नगरनिवासीगण करताल, मृदंग, झाँझ, ढोल, डफ और नगाड़े बजा रहे हैं, सुन्दर और सुहावनी शहनाइयाँ बज रही हैं। मनोहर गान गाये जा रहे हैं। वीणा और बाँसुरीकी सुमधुर ध्वनि हो रही है। आकाशमें देवताओंके विमान छाये हैं और सब बड़े हर्षसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं।

(४)

परम रमणीय अयोध्या नगरीमें रत्नोंका बना हुआ एक बहुत ही सुन्दर विशाल मण्डप है। उसके चारों ओर सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंकी बंदनवार बँधी है। दिव्य पुष्पोंका बहुत सुन्दर विशाल चँदोवा है। उसमें पुष्पक विमान है और उस विमानपर एक दिव्य मनोहर सिंहासन है। सिंहासनपर भगवान् श्रीराम आदिशक्ति श्रीजानकीजीके साथ विराजमान हैं। देवता, असुर, वानर और मुनिगण सब अलग-अलग दल बनाये विमानमें खड़े भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं। लक्ष्मणसहित तीनों भाई और श्रीहनुमान्‌जी भगवान् श्रीरामजी और श्रीजानकीजीकी सेवामें लगे हैं। भगवान्‌का नीलमेघके समान श्याम-शरीर है, जिसपर हरे प्रकाशकी आभा पड़ रही है। भगवान्‌के सारे शरीरपर शुभ्र चन्दन लगा है। मंजुल श्याम-शरीरपर दिव्य पीताम्बर बड़ा ही सुन्दर जान पड़ता है, मानो नीलमेघपर चन्द्रमाकी चाँदनी देखकर बिजली छिपना छोड़कर स्थिररूपसे दमक रही हो। भगवान्‌का समस्त शरीर सुचिक्कण, सुगन्धमय और प्रकाशका पुंज है। भगवान्‌के पद्मरागमणिके समान मनोहर और कोमल चरणतलोंमें ध्वजा, अंकुश, वज्र और कमल आदिके शुभ चिह्न हैं। भगवान्‌के

चरणोंके अँगूठे और अँगुलियाँ परम सुन्दर हैं, उनपर अरुण वर्णके नखोंकी ज्योति जगमगा रही है। चरणोंमें मनोहर नूपुर हैं। जंघाएँ कदली-खम्भको भी मात करनेवाली चिकनी, कोमल और स्थूल हैं, जो हाथीके बच्चेकी सूँड़का मान-मर्दन करती हैं। घुटने ऐसे सुन्दर हैं मानो कामदेवके तरकसका निचला भाग हो। कटितटमें सुवर्ण और मणियोंकी बनी हुई करधनी है और पीताम्बर कसा है, उसीमें तरकस बँधा है। उदरकी तीन रेखाएँ और गम्भीर नाभि परम सुन्दर हैं। हृदयमें मोतियोंकी मनोहर माला है। गलेमें वनमाला और पवित्र यज्ञोपवीत शोभायमान है। कंधे सिंहोंके-से स्थूल हैं। शंख-सदृश तीव्ररेखावाले गलेकी छवि बड़ी ही प्यारी लगती है। मुखकी मनोहरता अवर्णनीय है। उसे देखते ही अनुपम आनन्द होता है। वह छवि करोड़ों कामदेवोंकी छविको भी हरनेवाली है। प्रभुके लाल-लाल होठोंके बीचमें अनुपम दन्तावली सुशोभित है। मनोहर मुसकान मनको बरजोरीसे हर लेती है। सुन्दर ठोड़ी, मनोहर गोल कपोल और तोतेकी चोंच-सी सुन्दर नासिका बड़े ही मनोहर हैं। भगवान्‌के नेत्र कमलका मान-मर्दन करनेवाले हैं तथा चितवन अति मनोहर अमृतकी वृष्टि करती है। कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं। सिरपर काले घुँघराले केश हैं। भगवान्‌की बाँकी भ्रुकुटि है। मस्तकपर कुंकुमके तिलक हैं। सिरपर हीरे और मणियोंके जड़े हुए सुवर्ण-मुकुटकी कान्ति सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित कर रही है। भगवान्‌का कोटि-कोटि सूर्योंका-सा प्रकाश है और उनमें करोड़ों चन्द्रमाओंकी-सी सुशीतलता है।

(५)

मन्दाकिनीजीके तीरपर मनोहर चित्रकूट पर्वतपर कल्पवृक्षके नीचे सुन्दर स्फटिक-शिलापर भगवान् श्रीरामजी और श्रीसीताजी

विराजमान हैं। श्रीलक्ष्मणजी दूर खड़े पहरा दे रहे हैं। भगवान् नखसे शिखातक परम सुन्दर और दर्शनीय हैं। सुन्दर श्याम-शरीर है। वक्षःस्थल और कंधे विशाल हैं। गलेमें वनमाला है। वल्कल-वस्त्र पहने हैं, मुनियोंका-सा वेश है, नेत्र बड़े ही मनोहर और कृपाके समुद्र हैं। जटाओंका मुकुट अत्यन्त सुन्दर है। मनोहर मुख-मण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी छविको भी मलिन कर रहा है। कर-कमलोंमें सुन्दर धनुष-बाण और कटिप्रदेशमें तरकस बँधा है! गौरवर्ण परमतेजस्वी श्रीलक्ष्मणजी भी इसी भाँति सुशोभित हैं।

और भी अनेकों प्रकारके भगवान् श्रीरामजीके ध्यान करनेयोग्य स्वरूप हैं। उपर्युक्त पाँचोंमेंसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार साधक किसी भी स्वरूपका ध्यान कर सकते हैं।

श्रीसीतारामका ध्यान

कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासिनं
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं
पश्यन्तं मुकुटांगदादिविविधाकल्पोज्ज्वलांगं भजे॥

भगवान् श्रीरामकी देहकान्ति मेघके समान श्यामवर्ण है, वे बड़े ही कोमलांग हैं और वीरासनसे बैठे हुए हैं, उनके एक हाथमें ज्ञानमुद्रा है और दूसरा हाथ जानुपर रखा हुआ है, उनके वाम पार्श्वमें पद्महस्ता विद्युत्‌की भाँति तेजोमयी सीतादेवी विराजिता हैं और श्रीराम उनकी ओर देख रहे हैं। श्रीरामचन्द्रके मस्तकपर रत्नमुकुट है और बाजूबंद आदि विविध रत्नमण्डित आभूषणोंसे शरीर प्रकाशित हो रहा है; ऐसे श्रीराघवका हम ध्यान करते हैं।

श्रीरामके बालरूपका ध्यान

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥

(श्रीरामचरितमानस)

उनके नील कमल और गम्भीर (जलसे भरे हुए) मेघके समान श्यामशरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी शोभा है। लाल-लाल चरणकमलोंके नखोंकी [शुभ्र] ज्योति ऐसी मालूम होती है जैसे [लाल] कमलके पत्तोंपर मोती स्थिर हो गये हों। [चरणतलोंमें] वज्र, ध्वजा और अंकुशके चिह्न शोभित हैं। नूपुर (पैंजनी)-की ध्वनि सुनकर मुनियोंका भी मन मोहित हो जाता है। कमरमें करधनी और पेटपर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभिकी गम्भीरताको तो वही जानते हैं जिन्होंने उसे देखा है। बहुत-से आभूषणोंसे सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदयपर बाघके नखकी बहुत ही निराली छटा है। छातीपर रत्नोंसे युक्त मणियोंके हारकी शोभा और ब्राह्मण (भृगु)-के चरण-चिह्नोंको देखते ही मन लुभा जाता है। कण्ठ शंखके समान (उतार-चढ़ाववाला, तीन

रेखाओंसे सुशोभित) है और ठोड़ी बहुत ही सुन्दर है। मुखपर असंख्य कामदेवोंकी छटा छा रही है। दो-दो सुन्दर दँतुलियाँ हैं, लाल-लाल होठ हैं। नासिका और तिलक-[के सौन्दर्य]-का तो वर्णन ही कौन कर सकता है। सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं, मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्मके समयसे रखे हुए चिकने और घुँघराले बाल हैं, जिनको माताने बहुत प्रकारसे बनाकर सँवार दिया है। शरीरपर पीली झँगुली पहनायी हुई है। उनका घुटना और हाथोंके बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है।

श्रीराम-लक्ष्मणके किशोररूपका ध्यान

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥
तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥
केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नागमनि माला॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय मोचन॥
कानन्हि कनक फूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी॥

रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस॥

(श्रीरामचरितमानस)

[दोनों भाइयोंके] पीले रंगके वस्त्र हैं, कमरके [पीले] दुपट्टोंमें तरकस बँधे हैं। हाथोंमें सुन्दर धनुष-बाण सुशोभित है। [श्याम और गौरवर्णके] शरीरोंके अनुकूल (अर्थात् जिसपर जिस रंगका चन्दन अधिक फबे उसपर उसी रंगके) सुन्दर चन्दनकी खौर लगी है। साँवरे और गोरे [रंग]-की मनोहर जोड़ी है। सिंहके समान (पुष्ट) गर्दन (गलेका पिछला भाग)

है; विशाल भुजाएँ हैं। [चौड़ी] छातीपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ताकी माला है। सुन्दर लाल कमलके समान नेत्र हैं। तीनों पापोंसे छुड़ानेवाला चन्द्रमाके समान मुख है। कानोंमें सोनेके कर्णफूल [अत्यन्त] शोभा दे रहे हैं और देखते ही [देखनेवालेके] चित्तको मानो चुरा लेते हैं। उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है और भौंहें तिरछी एवं सुन्दर हैं। [माथेपर] तिलककी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं मानो [मूर्तिमती] शोभापर मुहर लगा दी गयी है। सिरपर सुन्दर चौकोनी टोपियाँ [दिये] हैं, काले और घुँघराले बाल हैं। दोनों भाई नखसे लेकर शिखातक (एड़ीसे चोटीतक) सुन्दर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिये, वैसी ही है।

जनकपुरकी फुलवारीमें श्रीराम-लक्ष्मणका ध्यान

सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा॥
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए॥
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं॥
उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा॥
सुमन समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी सुठि लोना॥

केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥

(श्रीरामचरितमानस)

दोनों सुन्दर भाई शोभाकी सीमा हैं। उनके शरीरकी आभा नीले और पीले कमलकी-सी है। सिरपर सुन्दर मोरपंख सुशोभित हैं। उनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियोंके गुच्छे लगे हैं। माथेपर

तिलक और पसीनेकी बूँदें शोभायमान हैं। कानोंमें सुन्दर भूषणोंकी छवि छायी है। टेढ़ी भौंहें और घुँघराले बाल हैं। नये लाल कमलके समान रतनारे (लाल) नेत्र हैं। ठोड़ी, नाक और गाल बड़े सुन्दर हैं और हँसीकी शोभा मनको मोल लिये लेती है। मुखकी छवि तो मुझसे कही ही नहीं जाती, जिसे देखकर बहुत-से कामदेव लजा जाते हैं। वक्षःस्थलपर मणियोंकी माला है, शंखके सदृश सुन्दर गला है। कामदेवके हाथीके बच्चेकी सूँड़के समान (उतार-चढ़ाववाली एवं कोमल) भुजाएँ हैं, जो बलकी सीमा हैं। जिसके बायें हाथमें फूलोंसहित दोना है, हे सखि! वह साँवला कुँवर तो बहुत ही सलोना है। सिंहकी-सी (पतली-लचीली) कमरवाले, पीताम्बर धारण किये हुए, शोभा और शीलके भण्डार, सूर्यकुलके भूषण श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सखियाँ अपने-आपको भूल गयीं।

धनुषयज्ञमें श्रीराम-लक्ष्मणका ध्यान

राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥
चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥
कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥

कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें॥
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥

(श्रीरामचरितमानस)

सुन्दर साँवले और गौर शरीरवाले तथा विश्वभरके नेत्रोंको चुरानेवाले कोसलाधीशके कुमार राजसमाजमें [इस प्रकार] सुशोभित हो रहे हैं। दोनों मूर्तियाँ स्वभावसे ही (बिना किसी बनाव-शृंगारके) मनको हरनेवाली हैं। करोड़ों कामदेवोंकी उपमा भी उनके लिये तुच्छ है। उनके सुन्दर मुख शरद् [पूर्णिमा]-के चन्द्रमाकी भी निन्दा करनेवाले (उसे नीचा दिखानेवाले) हैं और कमलके समान नेत्र मनको बहुत ही भाते हैं। सुन्दर चितवन [सारे संसारके मनको हरनेवाले] कामदेवके मनको भी हरनेवाली है। वह हृदयको बहुत ही प्यारी लगती है पर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर गाल हैं, कानोंमें चंचल (झूमते हुए) कुण्डल हैं। ठोड़ी और अधर (ओठ) सुन्दर हैं, कोमल वाणी है। हँसी चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करनेवाली है। भौंहें टेढ़ी और नासिका मनोहर है। [ऊँचे] चौड़े ललाटपर तिलक झलक रहे हैं (दीप्तिमान् हो रहे हैं)। [काले घुँघराले] बालोंको देखकर भौंरोंकी पंक्तियाँ भी लजा जाती हैं। पीली चौकोनी टोपियाँ सिरोंपर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियाँ बनायी (काढ़ी) हुई हैं। शंखके समान सुन्दर (गोल) गलेमें मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो मानो तीनों लोकोंकी सुन्दरताकी सीमा [को बता रही] हैं। हृदयोंपर गजमुक्ताओंके सुन्दर कंठे और तुलसीकी मालाएँ सुशोभित हैं। उनके कंधे बैलोंके कंधेकी तरह [ऊँचे तथा पुष्ट] हैं, ऐंड़ (खड़े होनेकी शान) सिंहकी-सी है और भुजाएँ विशाल एवं बलकी भण्डार हैं। कमरमें तरकस और पीताम्बर बाँधे हैं। [दाहिने] हाथोंमें बाण और बायें सुन्दर कंधोंपर धनुष

तथा पीले यज्ञोपवीत (जनेऊ) सुशोभित हैं। नखसे लेकर शिखातक सब अंग सुन्दर हैं, उनपर महान् शोभा छायी हुई है।

श्रीरामका वरवेशमें ध्यान

स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे॥
पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे॥

(श्रीरामचरितमानस)

श्रीरामचन्द्रजीका साँवला शरीर स्वभावसे ही सुन्दर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाली है। महावरसे युक्त चरणकमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिनपर मुनियोंके मनरूपी भौंरे सदा छाये रहते हैं। पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रात:कालके सूर्य और बिजलीकी ज्योतिको हरे लेती है। कमरमें सुन्दर किंकिणी और कटिसूत्र हैं। विशाल भुजाओंमें सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। पीला जनेऊ महान् शोभा दे रहा है। हाथकी अँगूठी चित्तको चुरा लेती है। ब्याहके सब साज सजे हुए वे शोभा पा रहे हैं। चौड़ी छातीपर हृदयपर पहननेके सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊकी तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरोंपर मणि और मोती लगे हैं। कमलके समान सुन्दर

नेत्र हैं। कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं और मुख तो सारी सुन्दरताका खजाना ही है। सुन्दर भौंहें और मनोहर नासिका है। ललाटपर तिलक तो सुन्दरताका घर ही है। जिसमें मंगलमय मोती और मणि गुँथे हुए हैं, ऐसा मनोहर मौर माथेपर सोह रहा है।

वनवेशमें श्रीराम-लक्ष्मणका ध्यान

मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख चंद चकोरा॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥
दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥
मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥
जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥

(श्रीरामचरितमानस)

स्त्री-पुरुष आनन्दित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूपने उनके नेत्र और मनोंको लुभा लिया है। सब लोग टकटकी लगाये श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको चकोरकी तरह (तन्मय होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीका नवीन तमालके वृक्षके रंगका (श्याम) शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवोंके मन मोहित हो जाते हैं। बिजलीके-से रंगके लक्ष्मणजी बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नखसे शिखातक सुन्दर हैं और मनको बहुत भाते हैं। दोनों मुनियोंके (वल्कल आदि) वस्त्र पहने हैं और कमरमें तरकस कसे हुए हैं। कमलके समान हाथोंमें धनुष-बाण शोभित हो रहे हैं। उनके सिरोंपर सुन्दर जटाओंके मुकुट हैं; वक्षःस्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंपर पसीनेकी बूँदोंका समूह शोभित हो रहा है।

वनवेशमें श्रीसीता-राम-लक्ष्मणका ध्यान

सजनी! हैं कोउ राजकुमार।
पंथ चलत मृदु पद-कमलनि दोउ सील-रूप-आगार॥ १॥
आगे राजिवनैन स्याम-तनु, सोभा अमित अपार।
डारौं वारि अंग-अंगनिपर, कोटि-कोटि सत मार॥ २॥
पाछैं गौर किसोर मनोहर, लोचन-बदन उदार।
कटि तूनीर कसे, कर सर-धनु, चले हरन छिति-भार॥ ३॥
जुगुल बीच सुकुमारि नारि इक राजति बिनहि सिंगार।
इन्द्रनील, हाटक, मुकुतामनि जनु पहिरे महि हार॥ ४॥
अवलोकहु भरि नैन, बिकल जनि होहु, करहु सुबिचार।
पुनि कहँ यह सोभा, कहँ लोचन, देह-गेह संसार?॥ ५॥
सुनि प्रिय-बचन चितै हित कै रघुनाथ कृपा-सुखसार।
तुलसिदास प्रभु हरे सबन्हिके मन, तन रही न सँभार॥ ६॥

(गीतावली)

'अरी सजनी! ये कोई राजकुमार हैं। ये दोनों ही शील और रूपके भण्डार हैं तथा मार्गमें अपने मृदुल चरणकमलोंसे पैदल ही चल रहे हैं। आगे तो कमलनयन और श्याम शरीरवाले कुँवर हैं, जिनकी शोभा अतुलित और अपार है। उनके एक-एक अंगपर मैं सैकड़ों करोड़ कामदेव निछावर करती हूँ और पीछे गौर वर्ण, मनोहर किशोरावस्थावाले लाल हैं। उनके नेत्र और मुख भी बड़े ही सुन्दर हैं। वे कमरमें तरकस कसकर और हाथोंमें धनुष-बाण लेकर मानो पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही जा रहे हैं। दोनोंके बीचमें एक सुकुमारी नारी बिना ही शृंगार किये सुशोभित हो रही है। ये तीनों मिलकर ऐसे जान पड़ते हैं मानो पृथ्वी इन्द्रनील, सुवर्ण और मुक्तामणिका हार पहने हुए हो।

इन्हें तनिक नेत्र भरकर देख लो, व्याकुल मत होओ, तनिक विचार लो, फिर कहाँ यह शोभा मिलेगी? कहाँ हमारे नेत्र होंगे और कहाँ इस संसारमें ये घर और शरीर रहेंगे। ये प्रिय वचन सुनकर कृपा और सुखके सारस्वरूप भगवान् रामने उनकी ओर प्रीतिपूर्वक देखा।' तुलसीदास कहते हैं, ऐसा करके प्रभुने उन सबके चित्त चुरा लिये और उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि न रही।

सुबेल पर्वतपर श्रीरामका ध्यान

सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला॥
प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥
बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥

(श्रीरामचरितमानस)

पर्वतका एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय, समतल और विशेषरूपसे उज्ज्वल शिखर देखकर—वहाँ लक्ष्मणजीने वृक्षोंके कोमल पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथोंसे सजाकर बिछा दिये। उसपर सुन्दर और कोमल मृगछाला बिछा दी। उसी आसनपर कृपालु श्रीरामजी विराजमान थे। प्रभु श्रीरामजी वानरराज सुग्रीवकी गोदमें अपना सिर रखे हैं। उनके बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस [रखा] है। वे अपने दोनों कर-कमलोंसे बाण सुधार रहे हैं। विभीषणजी कानोंसे लगकर सलाह कर रहे हैं। परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान् अनेकों प्रकारसे प्रभुके चरणकमलोंको दबा रहे हैं। लक्ष्मणजी कमरमें तरकस कसे और हाथोंमें धनुष-बाण लिये वीरासनसे प्रभुके पीछे सुशोभित हैं।

रणविजयी श्रीरामका ध्यान

राजत राम काम-सत-सुंदर।
रिपु रन जीति अनुज सँग सोभित,
फेरत चाप-बिसिष बनरुह-कर॥ १॥
स्याम सरीर रुचिर श्रम-सीकर,
सोनित-कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत-निकर, हरिहित-गन,
भ्राजत मरकत-सैल-सिखरपर॥ २॥
घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि,
हरषित सकल रिच्छ अरु बनचर।
कुसुमित किंसुक-तरु-समूह महँ,
तरुन तमाल बिसाल बिटप बर॥ ३॥
राजिव-नयन बिलोकि कृपा करि,
किए अभय मुनि-नाग, बिबुध-नर।
'तुलसिदास' यह रूप अनूपम,
हिय-सरोज बसि दुसह बिपतिहर॥ ४॥

(गीतावली)

अपने शत्रु रावणको युद्धस्थलमें जीतकर भगवान् राम भाईके साथ विराजमान हैं। इस समय वे सैकड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर जान पड़ते हैं और अपना करकमल धनुष और बाणपर फेर रहे हैं। उनके श्याम शरीरपर पसीनेकी सुन्दर बूँदें और बीच-बीचमें मनोहर रुधिरकण शोभायमान हैं; मानो किसी मरकतमणिके पर्वतशिखरपर पटबीजनोंके समूहमें बीरबहूटियाँ शोभा पा रही हों। उनके चारों ओर घायल वीर बैठे हुए हैं। वे सम्पूर्ण रीछ-वानर बड़े ही प्रसन्न हैं। उस समय प्रभु ऐसे जान पड़ते हैं मानो

फूले हुए किंशुक वृक्षोंके बीचमें एक अति विशाल और तरुण तमाल वृक्ष हो। उस समय कमलनयन भगवान् रामने कृपादृष्टिसे देखकर सब मुनि, नाग, देवता और मनुष्योंको निर्भय कर दिया। तुलसीदासजी कहते हैं, यह दुःसह विपत्तिको दूर करनेवाला अनुपम रूप हमारे हृदय-कमलमें विराजमान रहे।

सिंहासनारूढ श्रीरामका ध्यान

नवदूर्वादलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
रविकोटिप्रभायुक्तं किरीटेन विराजितम्॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं पीताम्बरसमावृतम्।
दिव्याभरणसम्पन्नं दिव्यचन्दनलेपनम्॥
अयुतादित्यसंकाशं द्विभुजं रघुनन्दनम्।
वामभागे समासीनां सीतां कांचनसन्निभाम्॥
सर्वाभरणसम्पन्नां वामांके समुपस्थिताम्॥
रक्तोत्पलकराम्भोजां वामेनालिङ्ग्य संस्थितम्।
सर्वातिशयशोभाढ्यं दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितः॥

(अ० रामायण)

पार्वतीसहित श्रीशिवजीने देखा कि 'नवीन दूर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलदलके समान विशाल नेत्र, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशयुक्त मुकुटसे सुशोभित, करोड़ों कामदेवोंके समान लावण्ययुक्त पीताम्बरसे समावृत, दिव्याभूषणोंसे समन्वित, दिव्य चन्दनचर्चित, हजारों सूर्योंके समान तेजसम्पन्न, सबसे अधिक शोभायमान द्विभुज भगवान् श्रीरघुनाथजी अपनी बायीं ओर, करकमलमें रक्तकमल धारण किये विराजिता सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषिता सुवर्णवर्णा श्रीसीताजीके गलेमें अपनी बायीं भुजा रखे हुए सुशोभित हो रहे हैं।'

सिंहासनासीन श्रीरामका ध्यान

आजु रघुबीर-छबि जात नहिं कछु कही।
सुभग सिंहासनासीन सीतारवन,
भुवन-अभिराम, बहु काम सोभा सही॥ १॥
चारु चामर-व्यजन, छत्र-मनिगन बिपुल
दाम-मुकुतावली-जोति जगमगि रही।
मनहुँ राकेस सँग हंस-उडुगन-बरहि
मिलन आए हृदय जानि निज नाथ ही॥ २॥
मुकुट सुंदर सिरसि, भालबर, तिलक-भ्रू,
कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही।
मनहुँ हर-डर जुगल मारध्वजके मकर
लागि स्त्रवननि करत मेरुकी बतकही॥ ३॥
अरुन-राजीव-दल-नयन करुना-अयन,
बदन सुषमासदन, हास त्रय-तापही।
बिबिध कंकन हार, उरसि गजमनि-माल,
मनहुँ बग-पाँति जुग मिलि चली जलदही॥ ४॥
पीत निरमल चैल, मनहुँ मरकत सैल,
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहजही।
ललित सायक-चाप, पीन भुज बल अतुल,
मनुजतनु दनुजबन-दहन, मंडन-मही॥ ५॥
जासु गुन-रूप नहि कलित, निरगुन सगुन,
संभु, सनकादि, सुक भगति दृढ़ करि गही।
दास तुलसी राम-चरन-पंकज सदा
बचन मन करम चहै प्रीति नित निरबही॥ ६॥

(गीतावली)

आज रघुनाथजीकी छविका कुछ वर्णन नहीं किया जाता। आज त्रिभुवन-सुन्दर सीतारमण भगवान् राम सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हैं। वे सचमुच अनेकों कामदेवोंके समान शोभासम्पन्न हैं। सुन्दर चँवर, व्यजन, छत्र, अनेकों मणिगण तथा मुक्तामालाओंकी लड़ियोंकी ज्योति जगमगा रही है, मानो अपने प्रभुको हृदयमें पहचानकर [छत्ररूप] चन्द्रमाके सहित [चँवररूप] हंस, [मणिगणरूप] तारे और [व्यजनरूप] मोर श्रीरघुनाथजीसे मिलनेके लिये आये हैं। प्रभुके सिरपर सुन्दर मुकुट है, ललित ललाटपर तिलक और भ्रुकुटियाँ शोभायमान हैं तथा घुँघराली अलकोंके पास कुण्डलोंकी बड़ी शोभा हो रही है। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कामदेवकी भुजाके दो मकर भगवान् शंकरके भयसे [प्रभुको उनके स्वामी जान] कानोंसे लगकर मेलकी बातचीत कर रहे हैं। भगवान्के अरुण कमलदलके समान नेत्र करुणाके भण्डार हैं। उनका मुख सुषमाका आश्रय तथा हास तीनों तापोंको नष्ट करनेवाला है। वे हाथोंमें तरह-तरहके कंकण तथा हृदयमें हार तथा गजमुक्ताओंकी माला धारण किये हैं। मानो दो बगुलोंकी पंक्तियाँ मिलकर मेघकी ओर जा रही हों। वे अति स्वच्छ पीताम्बर धारण किये हैं, मानो मरकतमणिके पर्वतपर बहुत-सी बिजली अपने स्वभावको छोड़कर छायी हुई हो। उनके हाथोंमें सुन्दर धनुष-बाण हैं तथा पुष्ट भुजाओंमें अतुलित बल है। उनका यह मनुष्य-शरीर दैत्यवनको जलानेवाला तथा पृथ्वीका आभूषण है। जो निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं तथा जिनके गुण और रूपोंकी कोई गणना नहीं कर सकता, अतः शिव, सनकादि तथा शुकदेवजीने भी जिनके भक्तिभावको ही दृढ़ करके पकड़ा है, उन भगवान् रामके चरणकमलोंमें तुलसीदास मन, वचन और कर्मसे सदा प्रीतिका ही निर्वाह चाहता है।

श्रीरामका स्वरूप और उनकी प्रसन्नताका साधन

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

× × ×

सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

प्रश्न—भगवान् श्रीरामको कोई परात्पर ब्रह्म, कोई भगवान् विष्णुका अवतार, कोई महापुरुष, कोई आदर्श राजा और कोई काल्पनिक व्यक्ति मानते हैं; अतएव यह बताइये कि श्रीरामका वास्तविक स्वरूप क्या है?

उत्तर—भगवान् श्रीरामका प्रपंचातीत भगवत्स्वरूप कैसा है, इस बातको तो भगवान् ही जानते हैं। संसारमें ऐसा कोई भी नहीं, जो उनके स्वरूपकी यथार्थ और पूर्ण व्याख्या कर सके। भगवान्के सम्बन्धमें अबतक जो कुछ कहा गया है, वह सारा-का-सारा भगवान्का आंशिक वर्णन ही है, शाखाचन्द्र-न्यायसे संकेतमात्र है; तथापि वह मिथ्या नहीं है। समुद्रका प्रत्येक कण समुद्र है; इसी प्रकार भगवान्का जो कुछ भी वर्णन है, वह पूरा न होनेपर भी उन्हींका है और इस दृष्टिसे भगवान्के सम्बन्धमें जो जैसा कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। भगवान् श्रीराम परात्पर ब्रह्म भी हैं, विष्णुके अवतार भी हैं, महापुरुष भी हैं, आदर्श राजा भी हैं और उनके काल्पनिक होनेकी कल्पना करनेवाला मन आत्मरूप भगवान्के ही आश्रित होनेके कारण वे काल्पनिक भी हैं। बात यह है कि भगवान्का स्वरूप ही ऐसा है, जिसमें सभीका समावेश है; क्योंकि सब कुछ उन्हींसे उत्पन्न है, उन्हींमें है, सबमें

वे ही समाये हुए हैं—वे ही 'सर्व', 'सर्वगत', 'सर्व-उरालय' हैं। वस्तुतः भगवान्‌का स्वरूप, उनके गुण और भाव अकल, अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय हैं। उनकी उपमा कहीं मिलती ही नहीं। इसीसे कहा गया है—

निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

अर्थात् श्रीरामजी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं। श्रीरामके समान श्रीराम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं। जैसे अरबों जुगनुओंके समान कहनेसे सूर्य प्रशंसाको नहीं, वरं अत्यन्त लघुताको ही प्राप्त होता है, उसी प्रकार अपनी बुद्धिके विकासके अनुसार मुनीश्वर श्रीहरिका वर्णन करते हैं; किंतु प्रभु भक्तोंके भावमात्रको ग्रहण करनेवाले और अत्यन्त कृपालु हैं। वे उस वर्णनको प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं।

प्रश्न—मैं तो पूछता हूँ कि जिन भगवान्‌ने दशरथजीके यहाँ जन्म धारण किया था, वे कौन हैं?

उत्तर—वे साक्षात् भगवान् हैं। हाँ, कल्पभेदसे कभी भगवान् विष्णु रामरूपमें अवतीर्ण होते हैं तो कभी साक्षात् पूर्णब्रह्म परात्पर भगवान्‌का अवतार होता है। परंतु यह स्मरण रहे कि विष्णु भी भगवान्‌के ही स्वरूप हैं; इसलिये स्वरूपतः इनमें कोई तारतम्य नहीं है, लीलाभेदसे ही पृथक्त्व है।

प्रश्न—भगवान् अवतार क्यों लेते हैं?

उत्तर—अपनी इच्छासे। वस्तुतः भगवान्‌में कोई इच्छा भी नहीं है। भक्तोंकी इच्छा ही उनमें इच्छा पैदा कर देती है, इसीसे वे हमलोगोंमें उतर आते हैं। सच्ची बात तो यह है कि न उनमें

जन्म है, न कर्म; क्योंकि उनके अदृष्ट ही नहीं है। जीव तो अपने पूर्वकृत कर्मोंके संस्कारवश पराधीन हो देह धारण करके अपना कर्म-फल भोगता है और संचितकी स्फुरणा तथा वातावरणके वशमें होकर नवीन कर्म करता है; परंतु भगवान् ऐसा नहीं करते। कारण, उनमें कर्म-संस्कारोंका सर्वथा अभाव है और वे भोगदेह नहीं ग्रहण करते तथा कर्तृत्वाभिमान न होनेसे उनके द्वारा फलोत्पादक नवीन कर्म भी नहीं होता। उनका अवतार तो जीवोंपर अनुग्रहकी वर्षा करनेके लिये ही होता है।

प्रश्न—रामायण तथा अन्य पुराणादि ग्रन्थोंमें ऐसा पाया जाता है कि भगवान् शाप या वरदानके वश होकर जन्म ग्रहण करते हैं—जैसे नारदजीने उन्हें मनुष्य होनेका शाप दिया, वृन्दाने शाप दिया, जय-विजयका उद्धार करनेके लिये सनकादि महर्षियोंने शापानुग्रह किया, रावण-कुम्भकर्णादिको ब्रह्माने वर दिया, स्वायम्भुव मनु और शतरूपाको उनके यहाँ पुत्ररूपमें प्रकट होनेके लिये श्रीरामजीने वरदान दिया—इस प्रकारकी और भी अनेकों कथाएँ प्रसिद्ध हैं; इनका क्या हेतु है? बल्कि कथाएँ तो यहाँतक आती हैं कि शूर्पणखाकी इच्छा पूरी करनेके लिये भगवान्ने कृष्णावतारमें उसे कुब्जारूपमें अंगीकार किया, दण्डकारण्यके ऋषियोंकी इच्छा-पूर्तिके लिये भगवान्ने उन्हें गोपिकाओंके रूपमें स्वीकार किया और बालिवधका बदला श्रीकृष्णावतारमें छिपे हुए व्याधके द्वारा अपने चरणमें बाण मरवाकर चुकाया गया। फिर इन सबका क्या अर्थ है? क्या ये कथाएँ असत्य हैं?

उत्तर—असत्य एक भी कथा नहीं है। परंतु विचारकर देखनेपर पता लगेगा कि भगवान् अपने भक्तोंपर अनुग्रह करने तथा अपनी धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये लोकदृष्टिमें अपने ऊपर शाप-वरदानोंका एवं कर्म-फल-भोगका आरोप कर लेते हैं।

यही लोकसंग्रहका आदर्श है। वस्तुतः भगवान्पर न तो किसी शाप-वरदानका कोई प्रभाव होता है और न उन्हें किसी कर्म-फलका ही भोग करना पड़ता है। जब मुक्त पुरुष भी किसी शाप-वरदानके वश नहीं होते एवं देहाभिमान और कर्तृत्वाभिमान न रहनेके कारण अदृष्टके अभावसे फलभोगार्थ जन्म ग्रहण नहीं करते, तब भगवान्की तो बात ही क्या है। इसी विलक्षणताको बतानेके लिये भगवान्के जन्म-कर्मको 'लीला' कहा गया है।

भगवान् वस्तुतः किसी शाप-वरदानके वश नहीं हो सकते, इसपर एक इतिहास सुनो—महाभारतयुद्धके समाप्त हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाको लौट रहे थे। रास्तेमें उत्तंक मुनिका आश्रम था। श्रीकृष्ण उनके आश्रममें गये; उन्होंने मर्यादाकी रक्षाके लिये मुनिकी पूजा की, मुनिने भी उनका सत्कार किया। फिर बात होते-होते जब मुनिको यह पता लगा कि महाभारत-युद्ध हो गया और उसमें सब योद्धा मारे गये, तब वे श्रीकृष्णपर क्रोधित होकर बोले—'श्रीकृष्ण! तुम चाहते तो युद्धको टाल सकते थे, तुम्हारी उपेक्षाके कारण ही इस महायुद्धमें सबका संहार हुआ; मुझे इस समय तुमपर बड़ा क्रोध आ रहा है, अतः मैं तुम्हें शाप दूँगा।' श्रीकृष्णने कहा कि 'मुनिवर! आप तपस्वी हैं, गुरुभक्त हैं; शान्ति रखिये, मेरे अध्यात्मतत्त्वको जानिये। याद रखिये, आप मेरा तिरस्कार नहीं कर सकते। आपका शाप मुझपर नहीं चलेगा; बल्कि आप शाप देंगे तो आपका तप ही नष्ट हो जायगा। आप जानते नहीं—लोग जिसको सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त, क्षर-अक्षर कहते हैं, वह सब मेरा ही रूप है। सत्, असत्, सत्-असत् और सत्-असत्से परे जो कुछ है, मुझ सनातन देव-देवके सिवा और कुछ भी नहीं है।' यह उत्तर सुनकर उत्तंक मुनिने श्रीकृष्णका स्तवन किया और उनसे ऐश्वर-

रूप दिखलानेकी प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्णने उनपर कृपा करके उन्हें अपना विराट्स्वरूप दिखलाया, जिसे देखकर मुनि आश्चर्यमें डूब गये। अस्तु,

भगवान्की लीलाओंमें ऐसे और भी बहुत-से उदाहरण एवं सिद्धान्तवाक्य हैं, जिनसे यह सिद्ध है कि उन्हें धर्माधर्मरूप अदृष्ट या कर्म-संस्कारवश जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता, वे अपनी इच्छासे ही अपने दिव्य विग्रहरूपमें प्रकट होते हैं। भगवान् शंकरजीने सतीदेवीसे कहा है—

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

अर्थात् 'मुनि, धीर, योगी और सिद्ध पुरुष निर्मल मनसे निरन्तर जिनका ध्यान करते हैं; वेद, पुराण और शास्त्र नेति-नेति कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, वे ही सर्वव्यापक, अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी, मायापति, पूर्णब्रह्म, रघुकुलमणि श्रीराम अपने भक्तोंके हितके लिये अपनी इच्छासे अवतरित हुए हैं।'

भगवान्के अवतारका एक हेतु है जीवोंको सहज ही भवसागरसे पार उतार देना। भगवान् अवतार लेकर ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिनको गा-गाकर, सुन-सुनकर लोग सहज ही भव-सागरसे तर जाते हैं। भगवान्की इस इच्छामें भी भक्तोंकी इच्छा ही कारण होती है।

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥

अर्थात् शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणोंसे रहित, मायातीत दिव्य मंगलविग्रह) सच्चिदानन्दकन्दस्वरूप, सूर्यकुलके ध्वजारूप भगवान्

श्रीरामचन्द्रजी मनुष्योंके सदृश ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसाररूपी समुद्रके पार उतरनेके लिये पुलके समान हैं।

प्रश्न—अच्छा, यह बात तो समझमें आ गयी कि भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन भक्तोंपर अनुग्रह करना और लोगोंको भव-सागरसे तारना ही है और वे किसी कर्मके वश भी नहीं हैं; परंतु दशरथजीके यहाँ उनका जन्म हुआ था और कुछ कालके पश्चात् उनका देहत्याग भी हो गया। इसलिये उनका जन्म-मरण तो होता ही है; फिर जन्म नहीं है, यह कैसे कहा जाता है?

उत्तर—भाई! उनका जन्म-मरण-सा दीख तो सकता है; परंतु वे नित्य, अजन्मा और अविनाशी हैं। इससे वास्तवमें हमलोगों-जैसा उनका जन्म-मरण नहीं होता। उनका तो आविर्भाव और अन्तर्धान होता है। जैसे कोई योगी अपनी इच्छासे जब चाहे तब अपने योगबलद्वारा प्रकट हो जाता है और मनमें आते ही छिप जाता है, वैसे ही भगवान् अपनी स्वरूपभूता योगमायाको लेकर स्वेच्छानुसार प्रकट हो जाते हैं और फिर अन्तर्हित हो जाते हैं। यही उनका 'जन्म-मरण' है। योगीका उदाहरण भी वस्तुतः भगवान्‌के साथ लागू नहीं होता। उनका आविर्भाव-तिरोधान अनन्यसाधारण ही होता है। जो स्वरूपसे ही अजन्मा और अविनाशी हैं, उनका जन्म और मरण हमारी बुद्धिसे बाहरकी बात है। इसीसे गीतामें श्रीभगवान्‌ने कहा है कि 'मेरे दिव्य जन्म-कर्मको तत्त्वतः जाननेवाला देह छोड़नेपर पुनर्जन्म नहीं पाता, वह मुझको प्राप्त होता है।' जिनके जन्मके रहस्यको जाननेमात्रसे जीवका जन्म होना छूट जाता है, उनका जन्म कितना विलक्षण होगा!

रही देह-ग्रहण और देह-पातकी बात, सो कहीं-कहीं तो वे ऐसी लीला करते हैं, जिससे मायादेहका ग्रहण-त्याग दीखता ही नहीं। वे जिस रूपमें प्रकट होते हैं, उसी रूपमें अन्तर्हित हो जाते हैं—जैसे रामायण और भागवतके वर्णनानुसार भगवान् दिव्य चतुर्भुज

बालकके रूपमें प्रकट होते हैं, योनिद्वारसे उनका जन्म नहीं होता; और फिर वे समय आनेपर सदेह ही दिव्य लोकमें चले जाते हैं, यहाँ उनका कोई शरीर नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि वे दिव्य देहसे तो अन्तर्धान हो जाते हैं, परंतु लोगोंको दिखानेके लिये माया-देहका निर्माण करके उसे छोड़ जाते हैं। महाभारत, पद्मपुराण आदिमें भगवान्‌की जिस देहके छोड़नेकी बात आती है, वह ऐसी ही देह है।

प्रश्न—जहाँ कहीं भी भगवान्‌के द्वारा देह छोड़े जानेका वर्णन मिलता है, वहाँ यह माननेमें क्या आपत्ति है कि उनका स्थूल देह तो पड़ा रह गया और वे हमलोगोंकी भाँति सूक्ष्म (लिंग) और कारण देहको लेकर अपने लोकमें चले गये?

उत्तर—ऐसा नहीं माना जा सकता; क्योंकि स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह अविद्याकी भूमिकामें हैं। ये तीनों ही देह जड और मायिक हैं। अनादिकालसे कर्मबन्धनमें पड़े हुए तथा आत्म-विस्मृतिके कारण जड देहमें अभिमान रखनेवाले वासनायुक्त जीवोंको ही ये देह प्राप्त होते हैं। वास्तवमें तो जीवका स्वरूप भी सच्चिदानन्दमय ही है; परंतु जबतक उसका अनादिकालीन देहाभिमान और तज्जनित कर्म-बन्धन नहीं छूटता, तबतक उसे इसकी उपलब्धि नहीं होती और वह जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ा रहता है। परंतु भगवान् तो प्रकृतिसे नित्य परे हैं; उनमें न कोई देहाभिमान है और न कर्मबन्धन है। इसलिये भगवान्‌के देहमें न तीन शरीर हैं, न जड अन्तःकरण है और न कोई अभिमान या कर्मका आधार ही है। भगवत्स्वरूप ही भगवद्देह है, वह नित्य निर्विकार चिदानन्दमय है। परंतु इस रहस्यको अधिकारी पुरुष ही जानते हैं—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

हाँ, भगवान् चाहें तो आवश्यकतानुसार अभिमानकी रचना करके मायिक देहका भी निर्माण कर सकते हैं; परंतु उनका वह अभिमान और वह मायिक शरीर आगन्तुक ही होता है, लीलाका ही होता है। ऐसे ही मायिक देहका त्याग किया जाना कहा जा सकता है। स्वरूपभूत देहका त्याग नहीं हो सकता। वह तो नित्य है, उसमें त्याग-ग्रहण नहीं है; वह प्रकृतिके गुणोंसे अतीत, मन-इन्द्रियोंसे अतीत, प्राकृत देश-कालसे अतीत, विकाररहित, सच्चिदानन्दविग्रह, 'माया-गुन-गोपार, निज-इच्छा-निर्मित' है—

निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।

× × ×

सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार॥

इसीलिये भक्तों और शास्त्रोंने उसे चिद्घनविग्रह कहा है। वह न कभी बनता है और न कभी बिगड़ता है, सदा एकरस और विशुद्ध रहता है।

भगवद्देहके सम्बन्धमें यह कहना भी भूल है कि वह योगियोंके अनुभवमें आनेवाले दिव्य तन्मात्राओंसे बना होता है। योगी या योगिराज—कोई भी भगवद्देहके तत्त्वोंका अनुभव नहीं कर सकता, वास्तवमें वहाँ कोई भगवान्‌से भिन्न तत्त्व या तन्मात्रा है ही नहीं। 'विशुद्ध सत्त्व' कहना तो भगवान्‌के विशुद्ध स्वरूपको लक्ष्य करानेके लिये है। कुछ लोग भूलसे 'विशुद्ध सत्त्व' का अर्थ रज-तमसे रहित केवल सत्त्वगुण मान लेते हैं; परंतु ऐसा मानना ठीक नहीं, क्योंकि प्रकृतिजन्य त्रिगुणोंमें दोको छोड़कर केवल एक गुण किसी भी कालमें कहीं भी नहीं रहता। एक गुणके विशेष प्रकाशके समय दो गुण छिपे रह सकते हैं। उनकी क्रियाएँ प्रबलरूपसे प्रत्यक्ष नहीं हो सकतीं, परंतु उनका अभाव कदापि नहीं होता। 'विशुद्ध सत्त्व' तो भगवद्देहके लिये

ही प्रयुक्त होनेवाला एक संकेत वाक्य है। सिद्ध योगियोंके सिद्ध देहके लिये भी कहीं-कहीं 'विशुद्ध सत्त्व' संज्ञा आती है; परंतु वह विशुद्ध देह और 'विशुद्ध सत्त्व' अपेक्षाकृत है। हमलोगोंकी अपेक्षा वह विशुद्ध है; किंतु वह प्रकृतिसे परे नहीं है, है वह मायिक ही। अवश्य ही उस देहमें भी अपेक्षाकृत दिव्यता होती है, वह सदा किशोर और रमणीय रह सकता है, उसमें बुढ़ापा और रोग नहीं होते, उच्च श्रेणीकी कायशुद्धिके कारण उसमेंसे दिव्य गन्ध निकल सकती है—यहाँतक कि उस देहके विण्मूत्रादिमें भी सुगन्ध पैदा हो जा सकती है और उसकी आयु भी बहुत अधिक हो सकती है। किसी-किसी सिद्ध योगीका शरीर कल्पके अन्ततक भी रह सकता है। परंतु स्मरण रहे कि यह सब कुछ होता है प्रकृतिके तत्त्वोंसे ही। प्रकृतिजन्य हो जानेसे ऐसा हो सकता है। कोई-कोई सिद्ध योगी देह-निर्माण भी कर लेते हैं। उनका वह 'निर्माणकाय' निर्माणचित्तका ही रूपान्तर होता है, वह देखनेमें देहके सदृश आकारवाला होनेपर भी वस्तुतः चित्तके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। योगियोंकी इच्छाशक्तिके प्रभावसे ही ऐसे योगदेहका निर्माण होता है, परंतु भगवान्‌का मायिक देह भी इससे अत्यन्त विलक्षण होता है। वह भगवान्‌के इच्छाधीन और विशुद्ध भागवती मायासे निर्मित होता है, अतः उसमें विलक्षण दिव्यता और सुन्दरता होती है। जब भगवान्‌के मायादेहकी ही इतनी महिमा है, तब भगवत्स्वरूप चिन्मय देहकी तो बात ही क्या है।

प्रश्न—तब तो भगवान् भी हमलोगोंकी भाँति ही देहधारी हुए, चाहे उनका वह देह कितना ही दिव्य हो। परंतु जो देहधारी हैं, वे निराकार, निर्गुण, अव्यक्त और सर्वव्यापक कैसे हो सकते हैं?

उत्तर—यही तो रहस्यकी बात है। इसीलिये तो गोसाईंजी महाराज कहते हैं—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

सुनो, भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप तो तभी समझमें आ सकता है, जब भगवान् कृपा करके समझा देते हैं। उसके लिये बड़ी साधनाकी आवश्यकता है। भगवत्संगियोंका श्रद्धापूर्वक संग हो, ऐसे सत्संगमें भगवान्‌के रहस्यमय गुणानुवादका श्रवण हो और प्रेमपूर्वक भगवान्‌का यथार्थ भजन हो, तब संसारके विषयोंसे वैराग्य होकर शम-दमादिकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर समरूपसे सर्वत्र व्याप्त भगवान्‌के निराकार ब्रह्मरूपका ज्ञान होता है। उसके बाद पराभक्ति—प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति होती है और फिर श्रीभगवान्‌की कृपासे भगवान्‌के अचिन्त्य दिव्यानन्दमय परमस्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है।

भगवान्‌के यथार्थ रूपको कोई समझा नहीं सकता; वह वाणी, मन, बुद्धि—सभीसे परे है। परंतु इस बातको किसी अंशमें समझनेके लिये भगवच्चर्चाके नाते कुछ विचार करना मंगलकारी ही होगा। इसी खयालसे कुछ विचार करनेका साहस कर रहे हैं। भगवान् एक हैं, अद्वितीय हैं, सच्चिदानन्दघन हैं। उनके सिवा और कुछ है ही नहीं, यह सर्वथा सत्य है। वे भगवान् मायाके आकारवाले न होनेके कारण 'निराकार' और मायाके गुणोंवाले न होनेसे 'निर्गुण' कहलाते हैं। उनका 'आकार' और उनके 'गुण' उनके स्वरूप ही हैं। इसीलिये भगवान् इस प्रकार 'नित्य निराकार' और 'नित्य निर्गुण' होनेपर भी अपने स्वरूपभूत गुण और आकारसे युक्त होनेके कारण 'नित्य साकार' और 'नित्य सगुण' भी हैं। परंतु उनका यह रूप और गुणसमूह उनसे अभिन्न हैं।

उनका वह दिव्यातिदिव्य 'साकार' और 'सगुण' स्वरूप मायिक न होनेसे सर्वथा अतीन्द्रिय है, इसलिये वे 'अव्यक्त' हैं। इस मायिक जगत्‌में भी अनेकों अतीन्द्रिय पदार्थ हैं और साधना करते-करते जब इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं और लिंगदेहके किसी अंशतक शुद्ध होनेपर जब स्थूलदेहसे आंशिक रूपमें उसका पृथक्त्व हो जाता है, तब इन्द्रियाँ भी सूक्ष्मभावापन्न होकर अतीन्द्रिय पदार्थोंको किसी अंशतक देख सकती हैं। योग-साधना करते-करते इसमें जितनी-जितनी अग्रगति होती है, उतनी-उतनी ही अतीन्द्रिय पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेकी सामर्थ्य बढ़ती जाती है। परंतु जागतिक अतीन्द्रिय पदार्थोंको देखनेकी शक्ति प्राप्त हो जानेपर भी भगवान्‌के दर्शनका अधिकार नहीं मिल जाता। वह तो तभी मिलता है, जब भगवान् स्वयं कृपा करके दिव्यदृष्टि दे देते हैं।

प्रश्न—तब फिर बहुत-से भक्तोंको दर्शन होनेकी जो बात कही जाती है, उसका क्या तात्पर्य है? क्या वह सब मिथ्या कल्पनामात्र है? या उन सभीको भगवत्कृपासे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो गयी रहती है? अवतारकालमें तो असंख्य जीव भगवान्‌को देखते हैं, वे सभी क्या दिव्यदृष्टि प्राप्त होते हैं?

उत्तर—भक्तोंको दर्शन देनेकी बात मिथ्या कल्पनामात्र नहीं है। भगवान् दया करके भक्तोंको अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन देते हैं और जिस समय दर्शन देते हैं, उस समय उतनी देरके लिये वहाँका सब कुछ 'दिव्य' कर देते हैं। भक्तकी दृष्टि भी दिव्य हो जाती है। अवश्य ही इसमें भी अधिकारिभेदसे तारतम्य रहता है।

अवतारकालमें भगवान् अपनेको योगमायासे समावृत रखते हैं। और जहाँ वे अपने इस योगमायाके परदेको हटाते हैं, वहीं

उनके स्वरूपके यथार्थ दर्शन हो सकते हैं। वह परदा सब जगह समानरूपसे नहीं हटता। इस योगमायाके कारण ही भगवान्‌का देह लोगोंको मनुष्यका-सा मालूम होता है। इसीलिये वे भगवान्‌को पहचान नहीं सकते—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

(गीता ७।२५)

अस्तु, अब तुम्हारी समझमें आ गया होगा कि भगवान्‌का दिव्यातिदिव्य सगुण साकार स्वरूप अव्यक्त कैसे है? रही सर्वव्यापककी बात, सो उसके लिये सूर्यका उदाहरण तुम्हारे सामने है। सूर्य एक ही है, परंतु वह एक ही समयमें सारे ब्रह्माण्डमें सबको दीखता है। जब प्रकृतिका एक पदार्थ—सूर्य इतना प्रभाव रख सकता है, तब सर्वशक्तिमान्, स्वभावसे ही सर्वव्यापी, एक ही भगवान् सब जगह प्रकाशित रहें, इसमें क्या आश्चर्य है। परंतु भगवान् तो लीलामय हैं न! वे एक ही साथ नित्य निर्विशेष और नित्य सविशेष होते हुए ही नित्य लीलामय हैं। उनकी लीलामें कभी विराम है ही नहीं। नित्य-लीलाके लिये उन एकके ही अनेकों लीलास्वरूप हैं और वे सभी सत्य तथा नित्य हैं। वे अनेक होनेपर भी नित्य एक ही हैं, यही उनकी भगवत्ताकी महिमा है। वे ही भगवान् सच्चिदानन्दघन परम अक्षर ब्रह्म हैं, वे ही 'सर्वत्र व्यापक' परमात्मा हैं। वे ही विराट् हैं (माता कौसल्याको अपने श्रीमुखमें और काकभुशुण्डिजीको अपने उदरमें श्रीरामजीने विराट्‌रूप दिखलाये ही हैं) और वे ही जीवात्मारूपसे जड जगत्‌के अंदर अनुस्यूत अध्यात्म हैं। वे ही अपरा प्रकृति और उसके परिणामसे उत्पन्न समस्त भूतरूप क्षर अधिभूत हैं। वे ही कर्म हैं, वे ही विराट् ब्रह्माण्डाभिमानी हिरण्यमय पुरुष अधिदैव हैं। इस हिरण्यमय पुरुषको ही सूत्रात्मा,

हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा कहते हैं। वे ही सब यज्ञोंके भोक्ता और प्रभु होनेसे अधियज्ञ हैं। वे ही अन्तर्यामी हैं, वे ही समग्र संसार हैं। वे ही अखिल-ब्रह्माण्डनायक, अज, अनादि, निर्विकार, सर्वशक्तिमान् , परम करुणामय, परम प्रेममय, परमैश्वर्यमय, परम ज्ञानमय, परम वैराग्यमय, परम यशोमय, परम श्रीमय और परम धर्ममय षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् हैं। वे ही विभिन्न ब्रह्माण्डोंमें अपने अंशरूप विभिन्न त्रिमूर्तियोंके रूपमें विराजित हैं—

उपजहिं जासु अंस ते नाना। संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना॥
लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता॥

उनका स्वरूप अकथ और अचिन्त्य है; फिर उनके सम्बन्धमें यह कहना ही भूलसे भरा हुआ है कि वे देहधारी होते हुए ही निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और सर्वव्यापक कैसे हो सकते हैं।

उनका देह हमलोगों-जैसा विनाशी और जन्मशील देह नहीं है; वह नित्य है, शाश्वत है, श्रेष्ठ है, हानोपादानरहित है, प्रकृतिसे परे है और परमानन्द-संदोहरूप है। उसमें देह-देहीका पृथक्त्व नहीं है—देही ही देह है, देह ही देही है। वे नित्य परमधाममें रहते हुए ही व्यापक परमात्मारूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, ब्रह्मरूपसे अखण्ड स्थिर हैं, भगवान्‌रूपसे भक्तोंके सामने प्रकट हैं और जीवात्मारूपसे सर्वत्र कर्ता और भोक्ता बन रहे हैं। श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें वे ही परात्पर भगवान् प्रकट हैं, जो सबके आधार हैं, सर्वरूप हैं, सर्वमय हैं और सबसे परे हैं। वे पूर्णब्रह्म, परात्पर ब्रह्म और साक्षात् 'भगवान् स्वयम्' हैं।

प्रश्न—'भगवान् स्वयम्' तो श्रीकृष्णके लिये भागवतमें कहा गया है और वहाँ अन्य सब अवतारोंको अंशकला बतलाया गया है। फिर श्रीरामको 'स्वयं भगवान्' कैसे कहा जाता है?

उत्तर—अनेकों ब्रह्माण्ड हैं और सभी ब्रह्माण्डोंमें कल्पभेदसे

भगवान्‌के अवतार होते हैं। बहुत बार भगवान् विष्णु ही रामावतार और कृष्णावतार धारण करते हैं। जिस समय विष्णुभगवान्‌का श्रीराम या श्रीकृष्णरूपमें अवतार होता है, उस समय श्रीलक्ष्मीजी उनके साथ सीता या राधा—रुक्मिणीरूपमें अवतरित होती हैं; और जिस समय स्वयं परात्पर प्रभु अवतीर्ण होते हैं, उस समय उनकी साक्षात् स्वरूपाशक्ति अवतार धारण करती हैं। जब विष्णुभगवान्‌का रामावतार होता है और परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तब श्रीकृष्णको साक्षात् 'स्वयं भगवान्' और अन्य अवतारोंको अंशकला कहा जाता है। और जब विष्णुभगवान्‌का कृष्णावतार होता है और परात्पर ब्रह्म श्रीराम स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तब श्रीरामको साक्षात् 'स्वयं भगवान्' तथा अन्य अवतारोंको अंशकला कहा जाता है। परात्पर श्रीरामके लिये महारामायणमें कहा गया है—

भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः।
करुणः षड्‌गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम्॥

परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि विष्णुभगवान्‌का अवतार अपूर्ण होता है। भगवान् अंशांशिभावसे व्यक्त होनेपर भी सर्वत्र पूर्ण हैं। लीलाभेदसे ही उनमें तारतम्य है, स्वरूपसे नहीं।

जिस प्रकार परात्पर समग्र ब्रह्म श्रीरामसे समस्त ब्रह्माण्डोंमें भिन्न-भिन्न शिव, विष्णु और ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार उनकी स्वरूपाशक्ति श्रीसीताजीसे अनेकों ब्रह्माण्डोंमें अनेकों उमा, रमा और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

प्रश्न—भगवान् विष्णु और परात्पर ब्रह्ममें क्या अन्तर है और परात्पर ब्रह्म श्रेष्ठ क्यों माने गये हैं?

उत्तर—भगवान् विष्णु और परात्पर पुरुषोत्तम ब्रह्म (श्रीराम)-में

तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है। लीलाभेदसे अन्तर है। त्रिदेवगत विष्णु भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डोंमें अलग-अलग लीलाकार्य करनेके लिये प्रकट हैं, जो केवल सत्त्वमय 'पालन' का कार्य ही करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तीनों ही वस्तुतः परात्पर ब्रह्मकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं—जो सत्त्व, रज और तमरूप पालन, सृजन और संहारका नियमित कार्य करनेके लिये हैं। इनके कार्य लीलाक्षेत्रके अनुसार सीमाबद्ध हैं, आंशिक हैं, इसीसे ये सभी अंशावतार माने जाते हैं। तत्त्वतः अभेद होनेपर भी अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमें इनके अनन्तकोटि भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। इसीलिये काकभुशुण्डिजीने कहा है—

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन॥

परात्पर ब्रह्म ही इन सब रूपोंमें प्रकट हैं और उन्हींकी शक्तिसे ये सब कार्य करते हैं और उतना ही कार्य करते हैं, जितनेके लिये विधान है। इसी बातको बतलानेके लिये श्रीरामरूप परात्पर पुरुषोत्तम ब्रह्मकी इस प्रकार महिमा गायी गयी है जो सर्वथा सत्य है—

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥
... । बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥

और इसीलिये परात्पर ब्रह्म श्रीरामसे द्रोह करनेवालेकी उनके अंशरूप सहस्रों ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भी रक्षा नहीं कर सकते। कैसे करें? परात्पर ब्रह्मसे द्रोह करनेवाला स्वरूपतः उन त्रिदेवोंसे ही द्रोह करता है; क्योंकि वे उनसे सर्वथा अभिन्न हैं। और लीलाभेदसे परात्पर ब्रह्म उनके अंशी हैं। अंशीके द्रोहीको अंश कैसे शरण दे सकते हैं। इसीलिये कहा गया है—

संकर सहस बिष्नु अज तोही । सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

अतएव परमार्थतः अभेद होनेपर भी लीलाकी दृष्टिसे त्रिदेवोंकी अपेक्षा परात्पर ब्रह्म श्रेष्ठ हैं ही, और इसी दृष्टिसे ऐसा कहा भी जाता है।

एक बात और है। वेदान्तमें कहा गया है कि व्यष्टिभावसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहके अभिमानी जीवको वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ कहते हैं तथा समष्टिभावके अभिमानीको विश्व, हिरण्यगर्भ और ईश्वर। ये समष्टिके अभिमानी ही त्रिदेव हैं। ये सभी त्रिगुणमें हैं। कार्यकी दृष्टिसे ये त्रिदेव अवश्य ही ईश्वर कहे जाते हैं, परंतु वैसे प्रकृतिसे परे नहीं हैं। परात्पर प्रभु 'सर्वलोकमहेश्वर' हैं—'**तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्**' ये तीनों गुणोंसे अतीत, व्यष्टि-समष्टि-विभागरहित और नित्य 'नित्य' हैं। इस दृष्टिसे भी परात्पर ब्रह्म श्रीराम ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन त्रिमूर्तियोंसे परे और श्रेष्ठ माने गये हैं।

प्रश्न—श्रीभगवान्‌के सारे अंग क्या हमलोगों-जैसे ही होते हैं?

उत्तर—हमलोगोंके अंगोंसे उनकी कोई तुलना ही नहीं हो सकती। उनका आकार-प्रकार सभी अत्यन्त विलक्षण और परमाश्चर्य तथा आनन्ददायक होता है—

गिरा अनयन नयन बिनु बानी। .... ॥

अतः कोई उन्हें कैसे बताये! उनका वह भगवत्स्वरूप विग्रह माधुर्यमय है, वह 'आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि' और 'आनन्दैकरसमूर्ति' है। इसीके साथ उनके परमदिव्य प्रेम, दया, प्रभुता, भक्तवत्सलता आदि असंख्य गुण मानो मूर्तिमान् हुए उनके अंग-अंगसे प्रकाशित होते रहते हैं। उस दिव्य स्वरूपके करोड़वें अंशका भी वर्णन कोई नहीं कर सकता। वर्णन तो दूर, कोई अनुमान भी नहीं कर सकता। योगमायासे अनावृत

जो उनका स्वरूप है, उसकी जरा-सी क्षणिक झाँकी भी ब्रह्मानन्दको बहा देती है, कैवल्य-सुखको फीका कर देती है। श्रीजनकजीपर कृपा करके भगवान् श्रीरामने क्षणकालके लिये योगमायाका परदा दूर किया। ब्रह्मज्ञानियोंके गुरु श्रीजनकजी देखकर मुग्ध हो गये, उनकी आँखोंमें आनन्दाश्रु भर आये, वाणी गद्‌गद हो गयी, वे अपनेको सँभाल न सके और विश्वामित्रसे पूछने लगे—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुलपालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

जनकजीका ब्रह्मानन्द बरबस हट गया और वे सच्चिदानन्दघन सगुण विग्रहके दर्शनसे परमानन्दमें मग्न हो गये। जब श्रीरामजी जनकपुरसे विदा होने लगे तब श्रीजनकजी एकान्तमें श्रीरामजीसे मिले और बरबस भक्तके भावसे हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक वचन बोले—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥

नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल॥

इससे पता लगता है कि श्रीरामका सौन्दर्य-तत्त्व और उनका स्वरूप-तत्त्व कितना विलक्षण और अलौकिक है!

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके हस्त-पादादि अंग नहीं हैं, सभी हैं, परंतु हैं चिन्मय और अत्यन्त अलौकिक। योगमायासे समावृत होनेके कारण लोग उन्हें मनुष्यके-से देखते हैं, यही उनका 'मायामानुषरूप' है। दिवालीपर चीनीके हाथी-घोड़े बनाये जाते हैं, उनका हाथी-घोड़ेका-सा आकार दीखता है। यह आकार असत्य नहीं है, यह तो सत्य ही है; परंतु उनको रक्त-मांस और हड्डी-चमड़ीवाला समझना असत्य है। इसी प्रकार भगवान्‌के योगमायासमावृत रूपमें जो हाथ, पैर आदि अंग दीखते हैं, वे असत्य नहीं हैं; क्योंकि वे तो भगवान्‌के हैं ही। अवश्य ही वे हैं बहुत विलक्षण, योगमायाके परदेसे ठीक नहीं दीखते—मनुष्योंके-से दीखते हैं। परंतु उनको मनुष्योंकी भाँति स्थूल अस्थि-चर्ममय, स्थूल-सूक्ष्म-कारण-देहविशिष्ट मान लेना असत्य है। जैसे चीनीके हाथी-घोड़ोंमें सर्वत्र चीनी-ही-चीनी है, वैसे ही भगवान्‌का स्वरूप सर्वथा, सर्वदा और सर्वत्र चिदानन्दमय ही, भगवत्स्वरूप ही है।

'योगमाया-समावृतमानुषरूप' को भी सगुणरूप कहते हैं। अवश्य ही यह सगुणरूप उनके उस निर्गुण-सगुणरूपसे सर्वथा भिन्न और केवल लीलाके लिये ही लोगोंको दीखता है। इसीलिये इसको 'मायिक' भी कहते हैं। यही अगुणका भक्तोंके प्रेमवश सगुण होना है—'**भगत प्रेमबस सगुन सो होई।**' नहीं तो सगुण होना, न होना कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उनका निर्गुण-सगुणरूप अर्थात् दिव्य स्वरूपभूत गुणोंसे युक्त विग्रह तो नित्य है। होना उसीका होता है, जो पहले नहीं होता। दिव्य भगवद्देह तो स्वरूपतः नित्य है।

प्रश्न—अच्छा, देह कितने प्रकारके होते हैं?

उत्तर—देह प्रधानतया दो प्रकारके होते हैं—प्राकृत और अप्राकृत।

प्रकृतिके राज्यमें जितने प्रकारके देह हैं, वे सब प्राकृत हैं और प्रकृतिसे परे दिव्य चिन्मय राज्यमें जो देह हैं, वे अप्राकृत हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन भेदोंसे प्राकृत देहका निर्माण हुआ है। जबतक 'कारण' वर्तमान है, तबतक इस प्राकृत देहसे छुटकारा नहीं मिल सकता। इस त्रिविध-देहविशिष्ट प्राकृत देहसे छूटकर केवल आत्मरूपमें ही स्थित हो जाने अथवा दिव्य राज्यमें भगवान्‌के चिन्मय पार्षदादि स्वरूपोंकी प्राप्ति होनेको ही मुक्ति कहते हैं। मैथुनी-अमैथुनी, योनिज-अयोनिज—सभी प्राकृत शरीर वस्तुत: योनि और विन्दुके संयोगसे ही बनते हैं। इनमें कई स्तर हैं। अधोगामी विन्दुसे उत्पन्न होनेवाला शरीर अधम है और ऊर्ध्वगामीसे होनेवाला उत्तम। कामप्रेरित मैथुनसे उत्पन्न शरीर सबसे निकृष्ट है, किसी प्रसंगविशेषपर ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पसे विन्दुके अधोगामी होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाला शरीर उससे उत्तम द्वितीय श्रेणीका है, ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पमात्रसे केवल नारीशरीरके मस्तक, कण्ठ, कर्ण, हृदय या नाभि आदिके स्पर्शमात्रसे उत्पन्न होनेवाला देह तीसरी श्रेणीका है। इसमें नीचेके अंगोंकी अपेक्षा ऊपरके अंगोंके स्पर्शसे होनेवाला अपेक्षाकृत उत्तम है। बिना स्पर्शके केवल दृष्टिद्वारा होनेवाला उससे उत्तम; और बिना देखे संकल्पमात्रसे होनेवाला उससे भी उत्तम है। पहला और दूसरा मैथुनी है और शेष तीनों अमैथुनी, इससे ये देह पहले दोनोंकी अपेक्षा शुद्ध हैं। स्त्री-पिण्ड या पुरुष-पिण्डके बिना भी देह उत्पन्न होते हैं। परंतु इनमें भी सूक्ष्म योनि और विन्दुका सम्बन्ध रहता ही है। प्रेतादि लोकोंके वायुप्रधान और देवलोकादिके तेज:प्रधान आतिवाहिक देह भी प्राकृतिक ही हैं। योगियोंके 'निर्माणशरीर' बहुत शुद्ध हैं, परंतु वे भी प्रकृतिसे परे नहीं हैं। अप्राकृत देह इससे अत्यन्त विलक्षण होता है। और भगवद्देह तो भगवत्स्वरूप ही है तथा वह सर्वथा अनिर्वचनीय है देह-तत्त्व बहुत ही समझनेका विषय है,

इसके लिये बहुत समय चाहिये। दूसरे किसी समय इसपर विचार हो सकता है।

प्रश्न—अच्छी बात है, देह-तत्त्वकी बात फिर कभी पूछी जा सकती है। अब यह बताइये कि रामायणमें जगह-जगह श्रीरामको ब्रह्म बतलाया गया है, उन ब्रह्मका क्या स्वरूप है?

उत्तर—यह बार-बार कहा जा चुका है कि वस्तुतः ब्रह्म और राम एक ही तत्त्व हैं। परंतु रामायणमें 'ब्रह्म' शब्द प्रायः परात्पर समग्र ब्रह्मके लिये ही आया है, वेदान्तियोंके निर्गुण ब्रह्मके लिये नहीं; क्योंकि वह तो गुणोंसे सर्वथा रहित है और वह भगवान्‌की ही एक अभिव्यक्तिमात्र है। उसका अवतार नहीं हो सकता। अवतार तो सगुण ब्रह्मका ही होता है, चाहे वह अवतारी समग्र हो या समग्रका कोई अंश हो, यानी चाहे साक्षात् परात्पर भगवान् हों या उनके अंश विष्णु-शंकरादि हों। रामचरितमानसमें ब्रह्मका जो रूप बतलाया गया है, वह केवल निर्गुण ही नहीं, गुणसागर भी है; तथा इसी रूपमें जगह-जगह श्रीरामकी स्तुति की गयी है—

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
...॥

जय निर्गुन जय जय गुन सागर।

इससे सिद्ध है कि रामायणके अवतारी ब्रह्म परात्पर भगवान् हैं और वे दाशरथि श्रीरामचन्द्र ही हैं। वे ही परात्पर राम अपने स्वरूपको छिपाकर 'मायामानुषरूप' में लीला करते हैं—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥

उपर्युक्त वर्णनसे भलीभाँति जाना जा सकता है कि श्रीराम साक्षात् परब्रह्म हैं। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि ब्रह्मसूत्रके ब्रह्म, गीताके समग्र ब्रह्म—'पुरुषोत्तम', भागवतके 'स्वयं भगवान्' और श्रीरामचरितमानसके 'श्रीराम' एक ही तत्त्व हैं।

प्रश्न—पहले आप कह चुके हैं कि सिद्ध योगियोंके विशुद्ध देहमें जरा-व्याधि आदि नहीं होती, तब भगवान्‌के शरीरमें भी नहीं होनी चाहिये। फिर आजकल जो लोग भगवान्‌के कुछ चित्रोंमें दाढ़ी-मूँछ बना देते हैं, वे क्या भूल करते हैं?

उत्तर—निश्चय ही, भूल तो करते ही हैं। भगवान्‌का देह नित्य निरामय, नित्य नवकिशोर और नित्य नवीन रहता है। अवतारकालमें लीलाके हेतुसे सोलह वर्षकी अवस्थातक तो वह बढ़ता प्रतीत होता है—'प्रतीत होता है' इसीलिये कहा जाता है कि वास्तवमें वह बढ़ता नहीं। योगमायाके परदेके बाहर उसका बढ़ना दिखायी देता है। सोलह वर्षकी अवस्थाके बाद बाहरसे भी बढ़ता दिखायी नहीं देता। वह नित्य नवकिशोर ही रहता है। दाढ़ी-मूछें उस स्वरूपके नहीं होतीं। उनके सिरकी घुँघराली काली अलकावली सदा एक-सी शोभासम्पन्न रहती है, उनकी मुखश्री नित्य नवीन अपूर्व छविमयी दिखायी देती है।

प्रश्न—जिन लोगोंको भगवान्‌के दर्शन होते हैं, उन सबको क्या योगमायासे अनावृतरूपके ही दर्शन होते हैं?

उत्तर—नहीं। बहुत ही थोड़े पुरुष ऐसे भाग्यवान् होते हैं, जिनको अनावृतरूपके दर्शन होते हैं। वह रूप तो शिव-ब्रह्मादि

तथा मुनीश्वरादिके लिये भी परम दुर्लभ है। परंतु योगमायासे समावृतरूपके दर्शन भी बड़े ही सौभाग्यसे होते हैं, वह भी कोई मामूली बात नहीं है।

प्रश्न—विष्णु, शिव, ब्रह्मादिका स्वरूप क्या भगवान्‌से भिन्न है?

उत्तर—यह पहले कह ही चुके हैं कि वह तत्त्वतः भगवान्‌से अभिन्न है और लीलाके लिये भिन्न है। शिव और विष्णु विभिन्न ब्रह्माण्डोंमें भगवान्‌के अंशावताररूपमें भी हैं और मूलतः महाशिव तथा महाविष्णुके रूपमें सर्वथा सर्वदा अभिन्न भी। ब्रह्माका अधिकार जीवको भी प्राप्त हो सकता है और ब्रह्मा भगवान्‌के अंशावतार भी होते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान् एक ही हैं और वे सब रूपोंसे सर्वथा विलक्षण हैं। सच्चे भावसे किसी भी स्वरूपकी उपासना करनेवाला साधक अन्तमें उसी अचिन्त्य परस्वरूपको प्राप्त होता है।

यहाँ श्रीरामके स्वरूपके सम्बन्धमें श्रीरामचरितमानससे कुछ वचन उद्‌धृत किये जाते हैं। इनसे श्रीरामके स्वरूपका बहुत कुछ पता लग सकता है। श्रीशिवजी कहते हैं—

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥

'श्रीरामचन्द्रजी सच्चिदानन्दस्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोहरूपी रात्रिका लवलेश भी नहीं है। वे स्वभावसे ही प्रकाशरूप और षडैश्वर्ययुक्त भगवान् हैं, वहाँ तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल भी नहीं होता। (अज्ञानरूपी रात्रि हो तब तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल हो;

भगवान् तो नित्य ज्ञानस्वरूप ठहरे।) हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंता और अभिमान—ये सब जीवके धर्म हैं। श्रीरामचन्द्रजी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराणपुरुष हैं—इस बातको सारा जगत् जानता है। जो पुराण-पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाशके भंडार हैं, सब रूपोंमें प्रकट हैं, जीव, माया और जगत्—सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं।' यों कहकर शिवजीने उनको मस्तक नवाया।

मनु महाराज अभिलाषा करते हैं—

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥

'हृदयमें निरन्तर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम कैसे उन परम प्रभुको आँखोंसे देखें। जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं और परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता) लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं, जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं, जो आनन्दस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं, जिनके अंशसे अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णुभगवान् प्रकट होते हैं, ऐसे महान् प्रभु भी सेवकके वशमें हैं और भक्तके लिये दिव्य लीलाशरीर धारण करते हैं।'

श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

'हे राम! आप वेदकी मर्यादाके रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकीजी आपकी स्वरूपभूता माया हैं, जो कृपाके भंडार आपकी रुख पाकर जगत्का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तकवाले सर्पोंके स्वामी और पृथ्वीको अपने सिरपर धारण करनेवाले हैं, वही चराचरके स्वामी शेषजी लक्ष्मण हैं। देवताओंके कार्यके लिये आप राजाका शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसोंकी सेनाका नाश करनेके लिये चले हैं। राम! आपका स्वरूप वाणीके अगोचर, बुद्धिसे परे, अज्ञात, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं। राम! जगत् दृश्य है, आप उसको देखनेवाले हैं। आप [अपने अंशस्वरूप] ब्रह्मा, विष्णु और शंकरको भी नचानेवाले हैं। जब वे भी आपके मर्मको नहीं जानते, तब और कौन आपको जाननेवाला है? वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनन्दन! हे भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले चन्दन! आपकी ही कृपासे भक्त आपको जान पाते हैं।'

प्रश्न—यदि श्रीराम परात्पर ब्रह्म हैं और श्रीशिवजी उनसे अभिन्न हैं तो वे शिवजीकी पूजा कैसे करते हैं? रामचरितमानसके अनुसार तो वे नित्य पार्थिव-पूजन करते थे और उन्होंने श्रीरामेश्वरकी स्थापना भी की थी।

उत्तर—यह कहा जा चुका है कि तत्त्वतः श्रीराम और श्रीशंकर एक ही हैं। श्रीराम और श्रीशिव ही क्यों—यह सारा चराचर जगत् भी वास्तवमें रामसे अभिन्न है। इसीसे तो रामायणमें '**सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी**॥' और '**मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत**' यह स्पष्ट कहा गया है और श्रीशंकरजीको तो रामायणमें श्रीरामजीके 'सेवक, स्वामी, सखा' तीनों बतलाया गया है। रामायणके अनुसार वे श्रीरामजीके अनन्य भक्त हैं, ऐसे भक्त, जो सीताका वेष बना लेनेपर सतीतकका त्याग कर देते हैं, और स्वामी हैं—ऐसे स्वामी, जिनकी पूजा रामजी नित्य करते हैं, और सखा भी हैं, क्योंकि शिवजीकी बारातमें भगवान् उनसे नाना प्रकारके सखोचित विनोद करते हैं। और वास्तवमें भेद इनके लीलारूपोंमें ही है, स्वरूपतः कोई भेद नहीं है। शैवोंके शिव, शाक्तोंकी शक्ति तथा वैष्णवोंके महाविष्णु, श्रीराम और श्रीकृष्ण—सब एक ही हैं। इस तरहकी शंका नहीं करनी चाहिये। सच्चा रामोपासक वैष्णव सम्पूर्ण चराचरमें अपने परम इष्टदेव श्रीरामको ही देखता है। वह यही समझता है कि मेरे ही राम कहीं शिवरूपमें, कहीं शक्तिरूपमें, कहीं निर्गुण ब्रह्मरूपमें पूजित होते हैं। यहाँतक कि मुसलमानोंके अल्लाह और ईसाइयोंके परम पिता परमेश्वर भी हमारे राम ही बने हुए हैं। रामके अतिरिक्त और कोई परमेश्वर है ही नहीं। श्रीराम ही श्रीशिवरूपसे श्रीरामकी पूजा करते हैं और श्रीराम ही श्रीरामरूपसे अपने श्रीशिवरूपकी पूजा करते हैं। ये सब लीलाएँ भक्तोंके कल्याणके लिये ही होती हैं।

भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु
भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं
रामस्य वै भुवितले समुपासकाश्च॥

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

प्रश्न—भगवान् श्रीरामके स्वरूपकी तो कुछ कल्पना हुई; अब यह बताइये कि उनको प्रसन्न करनेके साधन कौन-से हैं।

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर श्रीरामचरितमानसमें जगह-जगह दिया गया है। कुछ स्थलोंके वचन नीचे उद्धृत किये जाते हैं। माता पार्वती श्रीशिवजीसे कहती हैं—

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥

अर्थात् 'हे त्रिपुरारि! सुनिये, हजारों मनुष्योंमें कोई एक धर्माचरण-व्रत धारण करनेवाला होता है और करोड़ों धर्मात्माओंमें कोई एक विषयसे विमुख (विषयोंका त्यागी) तथा वैराग्यपरायण होता है। श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तोंमें कोई एक सम्यक् (यथार्थ) ज्ञानको प्राप्त करता है और करोड़ों ज्ञानियोंमें कोई एक ही जीवन्मुक्त होता है। जगत्‌में कोई बिरला ही ऐसा (जीवन्मुक्त) होगा। हजारों जीवन्मुक्तोंमें भी सब सुखोंकी खान, ब्रह्ममें लीन विज्ञानवान् पुरुष और भी दुर्लभ है। हे देवाधिदेव महादेवजी! धर्मात्मा, वैराग्यवान्, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन—इन सबमें भी वह प्राणी अत्यन्त दुर्लभ है, जो मद-मायारहित होकर रामभक्तिके परायण हो।'

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥
सुनु खगेस हरि भगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी । पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥

'जो भक्तिकी ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते और केवल ज्ञानके लिये श्रम (साधन) करते हैं, वे मूर्ख घरपर खड़ी हुई कामधेनुको छोड़कर दूधके लिये मदारके पेड़को खोजते फिरते हैं। हे पक्षिराज! सुनिये—जो लोग श्रीहरिकी भक्तिको छोड़कर दूसरे उपायोंसे सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड करनीवाले (अभागे) बिना जहाजके ही तैरकर महासमुद्रके पार जाना चाहते हैं।'

ज्ञानकी कठिनताका उल्लेख ज्ञान-दीपक-प्रकरणमें करके फिर काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

राम भगति चिंतामनि सुंदर । बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाकें । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

'श्रीरामजीकी भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। हे गरुड़जी! यह जिसके हृदयमें बसती है, वह दिन-रात अपने-आप ही परम प्रकाश-रूप रहता है; उसको दीपक, घी और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिये। इस प्रकार मणिका एक तो स्वाभाविक प्रकाश रहता है। फिर मोहरूपी

दरिद्रता समीप नहीं आती (क्योंकि मणि स्वयं धनरूप है); और तीसरे लोभरूपी हवा उस मणिमय दीपको नहीं बुझाती, [क्योंकि मणि स्वयं प्रकाशरूप है, वह किसी दूसरेकी सहायतासे नहीं प्रकाश करती] उसके प्रकाशसे अविद्याका प्रबल अन्धकार मिट जाता है। मदादि पतंगोंका सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदयमें भक्ति बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि उसके पास भी नहीं जाते। उसके लिये विष अमृतके समान और शत्रु मित्र हो जाता है। उस मणिके बिना कोई सुख नहीं पाता। बड़े-बड़े मानस रोग, जिनके वश होकर सब जीव दुःखी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते। श्रीरामभक्तिरूपी मणि जिसके हृदयमें बसती है, उसे स्वप्नमें भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। जगत्‌में वे ही मनुष्य चतुरोंके शिरोमणि हैं, जो उस भक्तिमणिके लिये भलीभाँति यत्न करते हैं।'

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥

'कलियुगमें तो केवल श्रीहरिकी गुणगाथाओंका गान करनेसे ही मनुष्य भव-सागरकी थाह पा जाते हैं। कलियुगमें न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है। श्रीरामजीका गुणगान ही एकमात्र आधार है। अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो श्रीरामजीको भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहोंको गाता है, वही भव-सागरसे तर जाता है—इसमें कुछ भी संदेह नहीं। नामका प्रताप कलियुगमें प्रत्यक्ष है।'

अन्तमें भगवान् श्रीरामका 'निज सिद्धान्त' सुनो—

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥
निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥
भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥
अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥
सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब॥

भगवान् कहते हैं—'हे काक! अब तुम मेरी सत्य, सुगम, वेदादिके द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुनो। मैं तुमको यह 'निज सिद्धान्त' सुनाता हूँ, इसे सुनकर मनमें धारण करो और सब तजकर मेरा भजन करो। यह सारा संसार मेरी मायासे

उत्पन्न है। इसमें अनेकों प्रकारके चराचर जीव हैं, वे सभी मुझे प्रिय हैं; क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं। इनमें मुझको मनुष्य सबसे अच्छे लगते हैं। मनुष्योंमें भी द्विज, द्विजोंमें भी वेदोंको धारण करनेवाले, उनमें भी वेदोक्त धर्मपर चलनेवाले और उनमें भी वैराग्यवान् मुझे प्रिय हैं। वैराग्यवानोंमें फिर ज्ञानी और ज्ञानियोंसे भी अत्यन्त प्रिय विज्ञानी हैं। विज्ञानियोंसे भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति है, कोई दूसरी आशा नहीं है। मैं तुझसे बार-बार सत्य 'निज सिद्धान्त' कहता हूँ कि मुझे अपने सेवकके समान प्रिय कोई भी नहीं है। भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवोंके समान ही प्रिय है। परंतु भक्तिमान् अत्यन्त नीच भी प्राणी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है—यह मेरी घोषणा है। पवित्र, सुशील और सुन्दर बुद्धिवाला सेवक, भला बताओ, किसको प्यारा नहीं लगता। वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं।'

'हे काक! सावधान होकर सुनो। एक पिताके बहुत-से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, शील और आचरणवाले होते हैं। कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी; कोई ज्ञानी, कोई धनी; कोई शूरवीर और कोई दानी। कोई सर्वज्ञ और धर्मपरायण होता है। पिताका प्रेम इन सबपर समान होता है। परंतु इनमेंसे यदि कोई मन, वचन और कर्मसे पिताका ही भक्त होता है, स्वप्नमें भी दूसरा धर्म नहीं जानता, तो वह पुत्र पिताको प्राणोंके समान प्रिय होता है—चाहे वह सब प्रकारसे अज्ञान (मूर्ख) ही क्यों न हो। इसी प्रकार तिर्यक् (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरोंसमेत जितने भी चेतन और जड जीव हैं; उनसे भरा हुआ यह सम्पूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है, अतः सबपर मेरी बराबर दया है। परंतु फिर भी इनमेंसे जो मद और मायाको छोड़कर मन, वचन और

शरीरसे मुझको भजता है—वह पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो—कपट छोड़कर जो ही सर्वभावसे मुझे भजता है, वही मुझे परम प्रिय है। हे पक्षी! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणोंके समान प्रिय है। यों विचारकर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझको ही भजो।'

उपर्युक्त विवेचनसे यह अच्छी तरह समझमें आ गया होगा कि श्रीरामचरितमानसके भगवान् श्रीराम परात्पर पुरुषोत्तम पूर्णब्रह्म हैं और उनके प्रेम-लाभके लिये अविचल एवं विशुद्ध भक्ति ही एकमात्र साधन है। मुक्ति तो ऐसे भक्तोंके पीछे-पीछे उनका आश्रय पानेके लिये फिरती है, परंतु वे अनन्यप्रेमी भक्त भक्तिपर ही लुभाये रहकर उसका आदर नहीं करते—

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥

अन्तमें—आओ, हमलोग भी रामतत्त्वज्ञशिरोमणि तुलसीके सुरमें सुर मिलाकर अपने जीवनका यही परमफल बनायें—

सियराम-सरूपु अगाध अनूप बिलोचन-मीननको जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख रामको नामु, हिएँ पुनि रामहिको थलु है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है॥

सच्चिदानन्दके ज्योतिषी

सर्वव्यापक, निरंजन, निर्गुण, अजन्मा, हर्ष-विषादसे रहित, नाम-रूपरहित परमब्रह्म परमात्मा जब भक्तिके वशीभूत होकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीअयोध्यामें माता श्रीकौसल्याजीकी गोदमें श्रीरामरूपमें अवतरित हुए, तब अयोध्यानगरी एक अलौकिक शोभाको प्राप्त हुई। जहाँपर अलौकिक शोभाधाम सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं बालरूपसे खेल रहे हों, वहाँकी छविका क्या कहना! सुर-नर-मुनि सभी अयोध्यानगरीके सौभाग्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे थे और भगवान्‌की रूप-माधुरीका पान करनेके लिये तथा परमानन्दका रसास्वादन करनेके लिये मनुष्यरूपमें अयोध्याकी गलियोंमें चक्कर लगाया करते थे। अखिलभुवनपति भगवान् महेश्वर भी उस समय अपने सुरम्य कैलासधाममें टिक न सके; वह उन्हें अयोध्याके मुकाबले सूना, नीरस-सा लगने लगा। उन्होंने काकभुशुण्डि तथा कुछ अन्यान्य प्रेमी ऋषि-मुनियोंका एक दल संगठित किया और अयोध्यानगरीमें आकर निवास किया। इस रहस्यको उस समय कोई जानता नहीं था। भगवान् शंकर अपने दलके साथ राजमहलके इर्द-गिर्द चक्कर लगाया करते थे कि किसी तरह प्रभुके बालरूपकी झाँकी मिल जाय।

एक दिन उन्होंने अपने साथियोंको तो बाल शिष्योंका रूप धारण कराया और स्वयं एक वयोवृद्ध अनुभवी ज्योतिषी बन बैठे। इस तरह दिव्य वेश बनाकर अपनी मण्डलीसहित वे राजभवनके द्वारपर पहुँचे। उस समयका वर्णन भक्तप्रवर श्रीतुलसीदासजी अपनी गीतावलीमें इस प्रकार करते हैं—

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन्ह परिचौ पायो॥ १॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥ २॥
पायँ पखारि, पूजि दियो आसन असन बसन पहिरायो।
मेले चरन चारु चार्‍यो सुत माथे हाथ दिवायो॥ ३॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक, नयन जल छायो।
लै लै गोद कमल कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥ ४॥
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय-स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन, लखनको जय सुख सुजस सुनायो॥ ५॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यो महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥ ६॥

राजभवनके रनिवासमें खबर पहुँची कि आज अवधपुरीमें एक सामुद्रिक ज्योतिषी आये हैं, जो हथेली देखकर ही सारे गुण बता देते हैं। उनके कथनकी सत्यताका परिचय बहुत-से लोगोंको मिला है। वे बूढ़े ब्राह्मण बड़े ही प्रामाणिक हैं! उनका बड़ा सुन्दर 'शंकर' नाम है और उनके साथ कई बालक शिष्य भी हैं। यह सुनकर माता कौसल्याजीने ज्योतिषीको भीतर महलमें बुला भेजा। ज्योतिषीके आनेपर उन्होंने ब्राह्मणके पैर धोये, पूजा की, आसनपर बैठाया, भोजन कराया और वस्त्र प्रदान किया। फिर उनके सुन्दर चरणोंमें चारों बालकोंको रखकर उनके सिरपर हाथ रखवाया। उन बालकोंको नखसे शिखतक निहारकर ब्राह्मणदेवताके शरीरमें रोमांच हो आया और नेत्रोंमें जल भर गया। फिर वे गोदमें ले-लेकर उनके करकमल देखने लगे। उस समय अपने आराध्यदेवको साकार मूर्तिमें और सो भी अपनी गोदमें पाकर

उनके हृदयमें आनन्दकी सीमा न रही। उन्होंने उनके जन्म लेनेके कारणसे लेकर भविष्यमें श्रीविश्वामित्रजीकी यज्ञरक्षाके मिससे श्रीसीताजीके स्वयंवरमें पधारनेतककी कथा सुनायी तथा राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके भावी जय, सुख और सुयशका वर्णन किया। यह सुनकर सारा रनिवास आनन्दमग्न हो गया, क्योंकि ज्योतिषीजीकी बात सबके हृदयको प्रिय लगनेवाली थी। उन्होंने उन विप्रप्रवरका अत्यन्त सम्मान किया और वे भी अतृप्त नयनोंसे सच्चिदानन्दकी सच्चिदानन्दमयी छविको मुँह फिरा-फिराकर निरखते हुए मन-ही-मन गुणगान करते हुए और ऊपरसे उन्हें आशीर्वाद देते हुए अपने धामको वापस चले गये।

राममाता कौसल्याजी

रामायणमें महारानी कौसल्याका चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है। यह महाराज दशरथकी सबसे बड़ी पत्नी और भगवान् श्रीरामचन्द्रकी जननी थी। प्राचीन कालमें मनु-शतरूपाने तप करके श्रीभगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्त करनेका वरदान पाया था; वे ही मनु-शतरूपा यहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान् श्रीराम ही पुत्ररूपसे उनके घर अवतरित हुए हैं। श्रीकौसल्याजीके चरित्रका प्रारम्भ अयोध्याकाण्डसे होता है। भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक होनेवाला है। नगरभरमें उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं। आज माता कौसल्याके आनन्दका पार नहीं है; वह रामकी मंगल-कामनासे अनेक प्रकारके यज्ञ, दान, देवपूजन और उपवास-व्रतमें संलग्न है। श्रीसीता-रामको राज्यसिंहासनपर देखनेकी निश्चित आशासे उसका रोम-रोम खिल रहा है, परंतु श्रीराम दूसरी ही लीला करना चाहते हैं। सौन्दर्योपासक महाराज दशरथ कैकेयीके साथ वचनबद्ध होकर श्रीरामको वनवास देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं।

धर्मके लिये त्याग

प्रातःकाल श्रीराम माता कैकेयी और पिता दशरथ महाराजसे मिलकर वनगमनका निश्चय कर लेते हैं और माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये उसके महलमें पधारते हैं। कौसल्या उस समय ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन करवा रही है और मन-ही-मन सोच रही है कि 'मेरे राम इस समय कहाँ होंगे, शुभ लग्न किस समय है? इतनेहीमें नित्य प्रसन्नमुख और उत्साह-पूर्ण हृदयवाले श्रीरामचन्द्र माताके समीप जा पहुँचते हैं। रामको देखते ही माता

यकायक उठकर वैसे ही सामने जाती है, जैसे घोड़ी बछेरेके पास जाती है। राम माताको पास आयी देख उसके गले लग जाते हैं और माता भी भुजाओंसे पुत्रको आलिंगन कर उनका सिर सूँघने लगती है।

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम्।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा॥
स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः।
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि॥

(वा० रा० २। २०। २०-२१)

इस समय कौसल्याके हृदयमें वात्सल्य-रसकी बाढ़ आ गयी, उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगी। कुछ देरतक तो यही अवस्था रही, फिर कौसल्या रामपर निछावर करके बहुमूल्य वस्त्राभूषण बाँटने लगी। श्रीराम चुपचाप खड़े थे। अब स्नेहमयी माँसे रहा नहीं गया। उसने हाथ पकड़कर पुत्रको नन्हे-से शिशुकी भाँति गोदमें बैठा लिया और लगी प्यार करने—

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥

जैसे रंक कुबेरके पदको प्राप्त कर फूला नहीं समाता, आज वही दशा कौसल्याकी है। इतनेमें स्मरण आया कि दिन बहुत चढ़ गया है, मेरे प्यारे रामने अभी कुछ खाया भी नहीं होगा। अतएव माँ कहने लगी—

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥

माता सोच रही है कि 'लगनमें बहुत देर होगी, मेरा राम इतनी देर भूखा कैसे रह सकेगा, कुछ मिठाई ही खा ले, दो-चार फल ही ले ले तो ठीक है।' उसे यह पता नहीं था कि राम तो दूसरे ही कामसे यहाँ आये हैं। भगवान् रामने कहा—'माता-पिताने मुझको वनका राज्य दिया है। जहाँ सभी प्रकारसे मेरा

बड़ा कल्याण होगा, तुम प्रसन्नचित्तसे मुझको वन जानेके लिये आज्ञा दे दो, चौदह साल वनमें निवासकर पिताजीके वचनोंको सत्य कर पुनः इन चरणोंके दर्शन करूँगा। माता! तुम किसी तरह दुःख न करो।'

रामके ये वचन कौसल्याके हृदयमें शूलकी भाँति बिंध गये। हा! कहाँ तो चक्रवर्ती साम्राज्यके ऊँचे सिंहासनपर बैठनेकी बात और कहाँ अब प्राणाराम रामको वन जाना पड़ेगा! कौसल्याजीके हृदयका विषाद कहा नहीं जाता, वह मूर्च्छित हो पड़ी और थोड़ी देर बाद जगकर भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगी।

कौसल्याके मनमें आया कि पिताकी अपेक्षा माताका स्थान ऊँचा है, यदि महाराजने रामको वनवास दिया है तो क्या हुआ, मैं नहीं जाने दूँगी। परंतु फिर सोचा कि यदि बहिन कैकेयीने आज्ञा दे दी होगी तो मेरा रोकनेका क्या अधिकार है, क्योंकि मातासे भी सौतेली माताका दर्जा ऊँचा माना गया है। इस विचारसे कौसल्या श्रीरामको रोकनेका भाव छोड़कर मार्मिक शब्दोंमें कहती है—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

मातासे कहा गया कि 'पिताकी ही नहीं, माता कैकेयीकी भी यही सम्मति है।' यहाँपर कौसल्याने बड़ी बुद्धिमानीके साथ यह भी सोचा कि यदि मैं 'श्रीरामको हठपूर्वक रखना चाहूँगी तो धर्म तो जायगा ही, साथ ही दोनों भाइयोंमें परस्पर विरोध भी हो सकता है—'

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥

अतएव सब तरहसे सोचकर धर्मपरायणा साध्वी कौसल्याने हृदयको कठिन करके रामसे कह दिया कि 'बेटा! जब पिता-

माता दोनोंकी आज्ञा है और तुम भी इसको धर्म-सम्मत समझते हो, तब मैं तुम्हें रोककर धर्ममें बाधा नहीं देना चाहती, जाओ और धर्मका पालन करते रहो।' एक अनुरोध अवश्य है—

मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥

पातिव्रतधर्म

कह तो दिया, परंतु फिर हृदयमें तूफान आया। अब कौसल्या अपनेको साथ ले चलनेके लिये आग्रह करने लगी और बोली—

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि॥

(वा० रा० २। २४। ९)

'बेटा! जैसे गाय अपने बछड़ेके पीछे, वह जहाँ जाता है, वहीं जाती है वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ तुम जहाँ जाओगे वहीं जाऊँगी।' इसपर भगवान् रामने माताको अवसर जानकर पातिव्रतधर्मका बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया, जो स्त्रीमात्रके लिये मनन करनेयोग्य है। भगवान् बोले—

भर्तुः किल परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः॥
यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः।
शुश्रूषा क्रियतां तावत् स हि धर्मः सनातनः॥
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च।
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः॥
न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेन धीमता।
भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः॥

भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा।
यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः॥
श्रमं नावाप्नुयात् किञ्चिदप्रमत्ता तथा कुरु।
दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत्॥
राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता।
व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा॥
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत्।
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्॥
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात्।
शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता॥
एष धर्मः स्त्रिया नित्योवेदेलोके श्रुतः स्मृतः।

(वा० रा० २।२४)

'माता! पतिका परित्याग कर देना स्त्रीके लिये बहुत बड़ी क्रूरता है, तुमको मनसे भी ऐसा सोचना नहीं चाहिये, करना तो दूर रहा। जबतक ककुत्स्थवंशी मेरे पिताजी जीते हैं, तबतक तुमको उनकी सेवा ही करनी चाहिये, यही सनातन धर्म है। जीवित स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है और पति ही प्रभु है। महाराज तो तुम्हारे और मेरे स्वामी राजा हैं और मालिक हैं। भाई भरत भी धर्मात्मा और प्राणिमात्रके साथ प्रिय आचरण करनेवाले हैं, वह भी तुम्हारी सेवा ही करेंगे, क्योंकि उनका धर्ममें नित्य प्रेम है। माता! मेरे जानेके बाद तुमको बड़ी सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे महाराज दुःखी होकर दारुण शोकसे अपने प्राण न त्याग दें। सावधान होकर सर्वदा वृद्ध महाराजके हितकी ओर ध्यान दो। व्रत, उपवासादि नियमोंमें तत्पर रहनेवाली धर्मात्मा स्त्री भी यदि अपने पतिके अनुकूल नहीं रहती है तो वह अधम गतिको प्राप्त

होती है, परंतु जो देवताओंका पूजन-नमस्कार आदि बिलकुल न करके भी पतिकी सेवा करती है, उसको उसीके फलस्वरूप उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक स्त्रीको केवल पतिकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये श्रुति-स्मृतिमें एकमात्र यही धर्म बतलाया गया है।'

साध्वी कौसल्या तो पतिव्रता-शिरोमणि थी ही, पुत्र-स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गयी थी, अब पुत्रके द्वारा पातिव्रत-धर्मका महत्त्व सुनते ही पुनः कर्तव्यपर डट गयी और श्रीरामको वनगमन करनेके लिये उसने आज्ञा दे दी। कौसल्याके पातिव्रतके सम्बन्धमें निम्नलिखित उदाहरण और भी ध्यान देनेयोग्य है—जिस समय श्रीसीताजी स्वामी श्रीरामके साथ वन जानेको तैयार होती हैं, उस समय कौसल्याजी उत्तम आचरणवाली सीताको हृदयसे लगाकर और उसका सिर सूँघकर निम्नलिखित उपदेश करती हैं—

'पुत्री! जो स्त्रियाँ पतिके द्वारा सब प्रकारसे सम्मान पानेपर भी गरीबीकी हालतमें उनकी सेवा नहीं करतीं, वह असती मानी जाती हैं। जो स्त्रियाँ सती हैं, वे ही शीलवती और सत्यवादिनी होती हैं। बड़ोंके उपदेशके अनुसार उनका बर्ताव होता है, वे अपने कुलकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करतीं और अपने एकमात्र पतिको ही परम पूज्य देवता मानती हैं। बेटी! आज मेरे पुत्र रामको पिताने वनवासी बना दिया है, वह धनी हो या निर्धन, तेरे लिये तो वही देवता है, अतः कभी उसका तिरस्कार न करना।'

यद्यपि परम सती सीताजीको पातिव्रतका उपदेश करना सूर्यको दीपक दिखाना है, तथापि सीताने सासके वचनोंसे कुछ भी बुरा नहीं माना या अपना अपमान नहीं समझा और उसकी बातें धर्मार्थयुक्त समझ हाथ जोड़कर कहा—'माता! मैं आपके उपदेशानुसार ही करूँगी, पतिके साथ किस प्रकारका बर्ताव करना

चाहिये, इस विषयका उपदेश माता-पिताके द्वारा मुझको प्राप्त हो चुका है। आप असाध्वी स्त्रियोंके साथ मेरी तुलना न करें—

धर्माद् विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा॥
नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेन या स्यादपि शतात्मजा॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥

(वा० रा० २। ३९। २८—३०)

'मैं कदापि धर्मसे विचलित न हो सकूँगी। जिस प्रकार चन्द्रमासे चाँदनी अलग नहीं होती, जिस प्रकार बिना तारके वीणा नहीं बजती, जिस प्रकार बिना पहियेके रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार स्त्री चाहे सौ पुत्रोंकी भी माँ क्यों न हो जाय, परंतु पति बिना वह कभी सुखी नहीं हो सकती। पिता, माता, भाई और पुत्र आदि जो कुछ सुख देते हैं, वह परिमित होता है और केवल इसी लोकके लिये होता है; परंतु पति तो मोक्षरूप अपरिमित सुखका दाता है, अतएव ऐसी कौन दुष्टा स्त्री है, जो अपने पतिकी सेवा न करे?'

जब राम वनको चले जाते हैं और महाराज दशरथ दुःखी होकर कौसल्याके भवनमें आते हैं, तब आवेशमें आकर वह उन्हें कुछ कठोर वचन कह बैठती है, इसके उत्तरमें जब दुःखी महाराज आर्तभावसे हाथ जोड़कर कौसल्यासे क्षमा माँगते हैं, तब तो कौसल्या भयभीत होकर अपने कृत्यपर बड़ा भारी पश्चात्ताप करती है, उसकी आँखोंसे निर्झरकी तरह आँसू बहने लगते हैं और वह महाराजके हाथ पकड़ उन्हें अपने मस्तकपर रख घबराहटके साथ कहती है—'नाथ! मुझसे बड़ी भूल हुई, मैं धरतीपर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न

होइये। मैं पुत्र-वियोगसे पीड़िता हूँ, आप क्षमा कीजिये। देव! आपको जब मुझ दासीसे क्षमा माँगनी पड़ी, तब मैं आज पातिव्रतधर्मसे भ्रष्ट हो गयी हूँ। आज मेरे शीलपर कलंक लग गया है। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये। अनेक प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रसन्न करनेयोग्य बुद्धिमान् स्वामी जिस स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये बाध्य होता है, उस स्त्रीके लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। स्वामिन्! मैं धर्मको जानती हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो कुछ कहा सो पुत्र-शोककी अतिशय पीड़ासे घबराकर कहा है।' कौसल्याके इन वचनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई और उनकी आँख लग गयी।

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह पता लगता है कि कौसल्या पातिव्रतधर्मके पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थी। स्त्रियोंको इस प्रसंगसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

कर्तव्यनिष्ठा

दशरथजी रामके वियोगमें व्याकुल हैं, खान-पान छूट गया है, मृत्युके चिह्न प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगे हैं, नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है, ऐसी अवस्थामें धीरज धारणकर अपने दुःखको भुला श्रीरामकी माता कौसल्या, जिसका प्राणाधार पुत्र वधूसहित वनवासी हो चुका है, अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको समझती हुई महाराजसे कहती है—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥

धन्य! रामजननी देवी कौसल्या, ऐसी अवस्थामें तुम्हीं ऐसे आदर्श वचन कह सकती हो, धन्य तुम्हारे धैर्य, साहस, पातिव्रत, विश्वास और तुम्हारी आदर्श कर्तव्यनिष्ठाको!

वधू-प्रेम

कौसल्याको अपनी पुत्रवधू सीताके प्रति कितना वात्सल्यप्रेम था, इसका दिग्दर्शन नीचेके कुछ शब्दोंसे होता है, जब सीताजी रामके साथ वन जाना चाहती हैं, तब रोती हुई कौसल्या कहती है—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥

जब सुमन्त श्रीसीता-राम-लक्ष्मणको वनमें छोड़कर अयोध्या आता है, तब कौसल्या अनेक प्रकार चिन्ता करती हुई पुत्रवधूका कुशल-समाचार पूछती है। फिर जब चित्रकूटमें सीताको देखती है, तब बड़ा ही दुःख करती हुई कहती है—'बेटी! धूपसे सूखे हुए कमलके समान, मसले हुए कुमुदके समान, धूलसे लिपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये हुए चन्द्रमाके समान तेरा यह मलिन मुख देखकर मेरे हृदयमें जो दुःखरूपी अरणीसे उत्पन्न शोकाग्नि है, वह मुझे जला रही है।'

यदि आज सभी सासोंका बर्ताव पुत्रवधुओंके साथ ऐसा हो जाय तो घर-घरमें सुखका स्रोत बहने लगे।

राम-भरतमें समानभाव और प्रजाहित

कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर नहीं मानती थी। उसका हृदय विशाल था। जब भरतजी ननिहालसे आते हैं और अनेक प्रकारसे विलाप करते हुए एवं अपनेको धिक्कारते हुए,

सारे अनर्थोंका कारण अपनेको मानते हुए जब माता कौसल्याके सामने फूट-फूटकर रोने लगते हैं, तब माता सहसा उठकर आँसू बहाती हुई भरतको हृदयसे लगा लेती है और ऐसा मानती है मानो राम ही लौट आये। उस समय शोक और स्नेह उसके हृदयमें नहीं समाता, तथापि वह बेटे भरतको धीरज बँधाती हुई कोमल वाणीसे कहती है—

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥

× × ×

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्त्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्त्रवहिं नयन जल छाए॥

कैसे आदर्श वाक्य हैं! रामकी माता ऐसी न हो तो और कौन हो?

महाराजकी दाहक्रियाके उपरान्त जब वसिष्ठजी और नगरके लोग भरतको राजगद्दीपर बैठाना चाहते हैं और जब भरत किसी प्रकार भी नहीं मानते, तब माता कौसल्या प्रजाके सुखके लिये धीरज धरकर कहती है—

× × ×। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥
बन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥

प्रजाहितका इतना ध्यान श्रीराम-माताको होना ही चाहिये। माताने रामके वन जाते समय भी कहा था 'मुझे इस बातका तनिक भी दुःख नहीं है कि रामको राज्यके बदले आज वन मिल रहा है, मुझे तो इसी बातकी चिन्ता है कि रामके बिना महाराज दशरथ, पुत्र भरत और प्रजाको महान् क्लेश होगा—

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

पुत्र-प्रेम

कौसल्याकी पुत्रवत्सलता आदर्श है। रामके वनवाससे कौसल्याको प्राणान्त क्लेश है, परंतु प्यारे पुत्र श्रीरामकी धर्मरक्षाके लिये कौसल्या उन्हें रोकती नहीं, वरं कहती है—

न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे॥
यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥

(वा० रा० २।२५।२-३)

'बेटा! मैं तुझे इस समय वन जानेसे रोक नहीं सकती। तू जा और शीघ्र ही लौटकर आ। सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करता रह। तू प्रेम और नियमके साथ जिस धर्मका पालन कर रहा है वह धर्म ही तेरी रक्षा करे।' इस प्रकार धर्मपर दृढ़ रहने और महात्माओंके सन्मार्गका अनुसरण करनेकी शिक्षा देती हुई माता पुत्रकी मंगलरक्षा करती है और कहती है—

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥

कर्तव्यपरायणा धर्मशीला त्यागमूर्ति माता कौसल्या इस प्रकार

पुत्रको सहर्ष वनमें भेज देती है। वियोगके दावानलसे हृदय दग्ध हो रहा है, परंतु पुत्रके धर्मकी टेक और उसकी हर्ष-शोकरहित सुख-दुःख-शून्य आनन्दमयी मंजुल मूर्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवान्वित समझती है। यह है सच्चा प्रेम! यहाँ मोहको तनिक भी गुंजाइश नहीं। भरतजीके सामने कौसल्या गौरवके साथ प्यारे पुत्र श्रीरामकी प्रशंसा करती हुई कहती है—'बेटा! महाराजने तेरे बड़े भाई रामको राज्यके बदले वनवास दे दिया' परंतु इससे रामके मुखपर कुछ भी म्लानता नहीं आयी—

पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥
सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥

यह सब होनेपर भी माताका हृदय पुत्रका मधुर मुखड़ा देखनेके लिये निरन्तर व्याकुल है। चौदह साल बड़ी ही कठिनतासे श्रीरामके ध्रुव सत्य वचनोंकी आशापर बीतते हैं। लंका विजयकर श्रीराम जब अयोध्या लौटते हैं और जब माताको यह समाचार मिलता है, तब वह सुनते ही इस प्रकार दौड़ती है, जैसे गाय बछड़ेके लिये दौड़ा करती है—

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्त्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥

बहुत दिनोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेम-समुद्रकी मर्यादा टूट जाती है, वह पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार सिर सूँघती है तथा कोमल मस्तक और मुखमण्डलपर हाथ

फेरती एवं टकटकी लगाकर देखती हुई मनमें बहुत ही आश्चर्य करती है कि मेरे इस कलके कुसुम-कोमल कमनीय शिशुने रावण-जैसे प्रबल पराक्रमीको कैसे मारा होगा। मेरे राम-लक्ष्मण तो बड़े ही सुकुमार हैं, ये महाबली राक्षसोंसे कैसे जीते होंगे?

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥
हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥

माता! क्या तुम इस बातको भूल गयीं कि ये तुम्हारे 'सुकुमार बारे बालक' लीलासंकेतसे ही त्रिभुवनको बनाने-बिगाड़नेवाले हैं। इन्हींकी मायासे सब कुछ हो रहा है। ये तो तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट होकर जगत्का कल्याण करते हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं। माता तुम धन्य हो!

कौसल्याको अपने धर्मपालनका फल मिलता है, उसका शेष जीवन सुखमय बीतता है और अन्तमें वह श्रीरामके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्तकर—

रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम्।
अतिक्रम्य गतिस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम्॥

हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसार-बन्धनको छिन्न कर, सात्त्विक, राजस, तामस तीनों गतियोंको लाँघकर परमपदको प्राप्त हो जाती है!

सद्‌गुणवती कैकेयी

रामायणमें महारानी कैकेयीका चरित्र सबसे अधिक बदनाम है। जिसने सारे विश्वके परम प्रिय प्राणाराम रामको बिना अपराध वनमें भिजवानेका अपराध किया, उसका पापिनी, कलंकिनी, राक्षसी, कुलविनाशिनी कहलाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। समस्त सद्‌गुणोंके आधार, जगदाधार राम जिसकी आँखोंके काँटे हो गये, उसपर गालियोंकी बौछार न हो तो किसपर हो? इसीसे लाखों वर्ष बीत जानेपर भी आज जगत्‌के नर-नारी कैकेयीका नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं और मौका पानेपर उसे दो-चार ऊँचे-नीचे शब्द सुनानेसे बाज नहीं आते। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कैकेयी सर्वथा दुर्गुणोंकी ही खान थी, उसमें कोई सद्‌गुण था ही नहीं। सच्ची बात तो यह है कि यदि श्रीरामवनवासमें कैकेयीके कारण होनेका प्रसंग निकाल लिया जाय तो शायद कैकेयीका चरित्र रामायणके प्राय: सभी स्त्रीचरित्रोंसे बढ़कर समझा जाय। कैकेयीके रामवनवासके कारण होनेमें भी एक बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसका उद्‌घाटन होनेपर यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामके अनन्य और अनुकूल भक्तोंमें कैकेयीजीका स्थान सर्वोच्च है। इस विषयपर आगे चलकर यथामति विचार प्रकट किये जायँगे। पहले कैकेयीके अन्य गुणोंकी ओर दृष्टि डालिये।

कैकेयी महाराज केकयकी पुत्री और दशरथजीकी छोटी रानी थी। यह केवल अप्रतिम सुन्दरी ही नहीं थी, प्रथम श्रेणीकी पतिव्रता और वीरांगना भी थी। बुद्धिमत्ता, सरलता, निर्भयता, दयालुता आदि सद्‌गुणोंका कैकेयीके जीवनमें पूर्ण विकास था। इसने अपने प्रेम और सेवाभावसे महाराजके हृदयपर इतना अधिकार कर लिया था कि महाराज तीनों पटरानियोंमें कैकेयीको ही सबसे अधिक

मानते थे। कैकेयी पति-सेवाके लिये सभी कुछ कर सकती थी। एक समय महाराज दशरथ देवताओंकी सहायताके लिये शम्बरासुर नामक राक्षससे युद्ध करने गये। उस समय कैकेयीजी भी पतिके साथ रणांगणमें गयी थीं, आराम या भोग भोगनेके लिये नहीं, सेवा और शूरतासे पतिदेवको सुख पहुँचानेके लिये। कैकेयीका पातिव्रत और वीरत्व इसीसे प्रकट है कि उसने एक समय महाराज दशरथके सारथिके मर जानेपर स्वयं बड़ी ही कुशलतासे सारथिका कार्य करके महाराजको संकटसे बचाया था। उसी युद्धमें दूसरी बार एक घटना यह हुई कि महाराज घोर युद्ध कर रहे थे, इतनेमें उनके रथके पहियेकी धुरी निकलकर गिर पड़ी। राजाको इस बातका पता नहीं लगा। कैकेयीने इस घटनाको देख लिया और पतिकी विजय-कामनासे महाराजसे बिना कुछ कहे-सुने तुरंत धुरीकी जगह अपना हाथ डाल दिया और बड़ी धीरतासे बैठी रही। उस समय वेदनाके मारे कैकेयीकी आँखोंके कोये काले पड़ गये, परंतु उसने अपना हाथ नहीं हटाया। इस विकट समयमें यदि कैकेयीने बुद्धिमत्ता और सहनशीलतासे काम न लिया होता तो महाराजके प्राण बचने कठिन थे।

शत्रुओंका संहार करनेके बाद जब महाराजको इस घटनाका पता लगा तो उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उनका हृदय कृतज्ञता तथा आनन्दसे भर गया। ऐसी वीरता और त्यागपूर्ण क्रिया करनेपर भी कैकेयीके मनमें कोई अभिमान नहीं, वह पतिपर कोई एहसान नहीं करती। महाराज वरदान देना चाहते हैं तो वह कह देती है कि मुझे तो आपके प्रेमके सिवा अन्य कुछ भी नहीं चाहिये। जब महाराज किसी तरह नहीं मानते और दो वर देनेके लिये हठ करने लगते हैं, तब दैवी प्रेरणावश 'आवश्यक होनेपर माँग लूँगी' कहकर अपना पिण्ड छुड़ा लेती है। उसका यह अपूर्व त्याग सर्वथा सराहनीय है।

भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये हैं। पीछेसे महाराजने चैत्रमासमें श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी की, किसी भी कारणसे हो, उस समय महाराज दशरथने इस महान् उत्सवमें भरत और शत्रुघ्नको बुलानेकी भी आवश्यकता नहीं समझी, न केकयराजको ही निमन्त्रण दिया गया। कहा जाता है कि कैकेयीके विवाहके समय महाराज दशरथने इसीके द्वारा उत्पन्न होनेवाले पुत्रको राज्यका अधिकारी मान लिया था। परन्तु रघुवंशकी प्रथा और श्रीरामके प्रति अधिक अनुराग होनेके कारण चुपचाप रामको युवराजपद प्रदान करनेकी तैयारी कर ली गयी। यही कारण था कि रानी कैकेयीके महलोंमें इस उत्सवके समाचार पहलेसे नहीं पहुँचे थे। रानी कैकेयी अपना स्वत्व जानती थी, उसे पता था कि भरतको मेरे पुत्रके नाते राज्याधिकार मिलना चाहिये, परंतु कैकेयी इस बातकी कुछ भी परवा न कर रामराज्याभिषेककी बात सुनते ही प्रसन्न हो गयी। देवप्रेरित कुबड़ी मन्थराने आकर जब उसे यह समाचार सुनाया तब वह आनन्दमें डूब गयी। वह मन्थराको पुरस्कारमें एक दिव्य उत्तम गहना देकर '**दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्**' कहती है—

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥
न मे परं किंचिदितो वरं पुनः
प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥

(वा० रा० २। ७। ३४—३६)

'मन्थरे! तूने मुझको यह बड़ा ही प्रिय संवाद सुनाया है, इसके बदलेमें मैं तेरा और क्या उपकार करूँ? (यद्यपि भरतको राज्य देनेकी बात हुई थी; परन्तु) राम और भरतमें मैं कोई भेद नहीं देखती, मैं इस बातसे बहुत प्रसन्न हूँ कि महाराज कल रामका राज्याभिषेक करेंगे। हे प्रियवादिनी! रामके राज्याभिषेकका संवाद सुननेसे बढ़कर मुझे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है। ऐसा अमृतके समान सुखप्रद वचन सब नहीं सुना सकते। तूने यह वचन सुनाया है, इसके लिये तू जो चाहे सो पुरस्कार माँग ले, मैं तुझे देती हूँ।'

इसपर मन्थरा गहनेको फेंककर कैकेयीको बहुत कुछ उलटा-सीधा समझाती है, परन्तु फिर भी कैकेयी तो श्रीरामके गुणोंकी प्रशंसा करती हुई यह कहती है कि श्रीरामचन्द्र धर्मज्ञ, गुणवान्, संयतेन्द्रिय, सत्यव्रती और पवित्र हैं, वह राजाके ज्येष्ठ पुत्र हैं,अतएव (हमारी कुलप्रथाके अनुसार) उन्हें युवराज-पदका अधिकार है। दीर्घायु राम अपने भाइयों और सेवकोंको पिताकी तरह पालन करेंगे। मन्थरे! तू ऐसे रामचन्द्रके अभिषेककी बात सुनकर क्यों दुःखी हो रही है? यह तो अभ्युदयका समय है, ऐसे समयमें तू जल क्यों रही है? इस भावी कल्याणमें तू क्यों दुःख कर रही है?

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं यथा भ्रातॄंस्तु राघवः॥

(वा० रा० २। ८। १८-१९)

'मुझे भरत जितना प्यारा है, राम उससे कहीं अधिक प्यारे हैं; क्योंकि राम मेरी सेवा कौसल्यासे भी अधिक करते हैं, रामको यदि

राज्य मिलता है तो वह भरतको ही मिलता है, ऐसा समझना चाहिये; क्योंकि राम सब भाइयोंको अपने ही समान समझते हैं।'

इसपर जब मन्थरा महाराज दशरथकी निन्दा कर कैकेयीको फिर उभाड़ने लगी, तब तो कैकेयीने उसको बड़ी बुरी तरह फटकार दिया—

ईदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता।
जिह्वायाश्छेदनं चैव कर्तव्यं तव पापिनि॥

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

इस प्रसंगसे पता लगता है कि कैकेयी श्रीरामको कितना अधिक प्यार करती थी और उसे रामके राज्याभिषेकमें कितना बड़ा सुख था! इसके बाद मन्थराके पुनः कहा-सुनी करनेपर कैकेयीके द्वारा जो कुछ कार्य हुआ, उसे यहाँ लिखनेकी आवश्यकता नहीं। उसी कुकार्यके लिये तो कैकेयी आजतक पापिनी और अनर्थकी मूलकारणरूपा कहलाती है। परंतु विचार करनेकी बात है कि रामको इतना चाहनेवाली कुलप्रथा और कुलकी रक्षाका हमेशा फिक्र रखनेवाली, परम सुशीला कैकेयीने राज्यलोभसे ऐसा अनर्थ क्यों किया? जो थोड़ी देर पहले रामको भरतसे अधिक प्रिय बतलाकर उनके राज्याभिषेकके सुसंवादपर दिव्याभरण पुरस्कार देती थी और राम तथा दशरथकी निन्दा करनेपर, भरतको राज्य देनेकी प्रतिज्ञा जाननेपर भी, मन्थराको 'घरफोरी' कहकर उसकी जीभ निकलवाना चाहती थी, वही जरा-सी देरमें इतनी कैसे बदल जाती है कि वह रामको चौदह सालके लिये वनके दुःख सहन करनेको भेज देती है और भरतके शील-स्वभावको जानती हुई भी उसके लिये राज्यका वरदान चाहती है?

इसमें रहस्य है। वह रहस्य यह है कि कैकेयीका जन्म भगवान् श्रीरामकी लीलामें प्रधान कार्य करनेके लिये ही हुआ

था। कैकेयी भगवान् श्रीरामको परब्रह्म परमात्मा समझती थी और श्रीरामके लीलाकार्यमें सहायक बननेके लिये उसने श्रीरामकी रुचिके अनुसार यह जहरकी घूँट पीयी थी। यदि कैकेयी श्रीरामको वन भिजवानेमें कारण न होती तो श्रीरामका लीलाकार्य सम्पन्न ही न होता। न सीताका हरण होता और न राक्षसराज रावण अपनी सेनासहित मरता। रामने अवतार धारण किया था 'दुष्कृतोंका विनाश करके साधुओंका परित्राण करनेके लिये।' दुष्टोंके विनाशके लिये हेतुकी आवश्यकता थी। बिना अपराध मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम किसीपर आक्रमण करने क्यों जाते? आजकलके राज्यलोभी लोगोंकी भाँति वे जबरदस्ती परस्वापहरण करना तो चाहते ही नहीं थे। मर्यादाकी रक्षा करके ही सारा काम करना था। रावणको मारनेका कार्य भी दयाको लिये हुए था, मारकर ही उसका उद्धार करना था। दुष्ट कार्य करनेवालोंका वध करके ही साधु और दुष्टोंका—दोनोंका परित्राण करना था। साधुओंका दुष्टोंसे बचाकर सदुपदेशसे और दुष्टोंका कालमूर्ति होकर मृत्युरूपसे—एक ही वारसे दो शिकार करने थे। पर इस कार्यके लिये भी कारण चाहिये, वह कारण था—सीताहरण। इसके सिवा अनेक शाप-वरदानोंको भी सच्चा करना था, पहलेके हेतुओंकी मर्यादा रखनी थी, परन्तु वन गये बिना सीताहरण होता कैसे? राज्याभिषेक हो जाता तो वन जानेका कोई कारण नहीं रह जाता। महाराज दशरथकी मृत्युका समय समीप आ पहुँचा था, उसके लिये भी किसी निमित्तकी रचना करनी थी। अतएव इस निमित्तके लिये देवी कैकेयीका चुनाव किया गया और महाराज दशरथकी मृत्यु एवं रावणका वध—इन दोनों कार्योंके लिये कैकेयीके द्वारा रामवनवासकी व्यवस्था करायी गयी!

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

'भगवान् सबके हृदयमें स्थित हुए समस्त भूतोंको मायासे यन्त्रारूढकी तरह घुमाते हैं।' इसी गीतावाक्यके अनुसार सबके नियन्ता भगवान् श्रीरामकी ही प्रेरणासे देवताओंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवी कैकेयीकी बुद्धि फेर गयी[१] और जब उसका पूरा असर हो गया, (**भावी बस प्रतीति उर आई।**) तब भगवदिच्छानुसार बरतनेवाली कैकेयी भगवान्की मायावश ऐसा कार्य कर बैठी,[२] जो अत्यन्त क्रूर होनेपर भी भगवान्की लीलाकी सम्पूर्णताके लिये अत्यन्त आवश्यक था।

अब प्रश्न यह है कि 'जब कैकेयी भगवान्की परम भक्त थी, प्रभुकी इस आभ्यन्तरिक गुह्य लीलाके अतिरिक्त प्रकाश्यमें भी श्रीरामसे अत्यन्त प्यार करती थी, राज्यमें और परिवारमें उसकी बड़ी सुख्याति थी, सारा कुटुम्ब कैकेयीसे खुश था, फिर भगवान्ने उसीके द्वारा यह भीषण कार्य कराकर उसे कुटुम्बियों और अवधवासियोंके द्वारा तिरस्कृत, पुत्रद्वारा अपमानित और

१-देवताओंने सरस्वतीको यह कहकर भेजा था कि—

मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम्॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे।
(अ० रा० २। २। ४५-४६)

'पहले मन्थरामें प्रवेश करके फिर कैकेयीकी बुद्धिमें प्रवेश करना और रामके अभिषेकमें विघ्न करके वापस लौट आना।'

२-कैकेयीके ऐसा करनेका एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि कैकेयी जब लड़कपनमें अपने पिताके घर थी, तब वहाँ एक दिन एक कुरूप ब्राह्मणको आया देखकर कैकेयीने उसकी 'दिल्लगी' उड़ायी थी और निन्दा की थी। इससे क्रुद्ध होकर उस तपस्वी ब्राह्मणने कैकेयीको यह शाप दिया था कि 'तू अपने रूपके अभिमानसे अंधी होकर मेरे कुरूप वदनकी निन्दा करती है, इसलिये तू भी कुरूपा स्त्रीकी बातोंमें आकर ऐसा कर्म कर बैठेगी' जिससे जगत्में तेरी बड़ी भारी नीच निन्दा होगी!'

इतिहासमें सदाके लिये लोकनिन्दित क्यों बनाया? जब भगवान् ही सबके प्रेरक हैं, तो साध्वी सरला कैकेयीके मनमें सरस्वतीके द्वारा ऐसी प्रेरणा ही क्यों करवायी, जिससे उसका जीवन सदाके लिये दु:खी और नाम सदाके लिये बदनाम हो गया?' इसीमें तो रहस्य है। भगवान् श्रीराम साक्षात् सच्चिदानन्द परमात्मा थे, कैकेयी उनकी परम अनुरागिणी सेविका थी। जो सबसे गुह्य और कठिन कार्य होता है, उसको सबके सामने न तो प्रकाशित ही किया जा सकता है और न हर कोई उसे करनेमें ही समर्थ होता है। वह कार्य तो किसी अत्यन्त कठोरकर्मी घनिष्ठ और परम प्रेमीके द्वारा ही करवाया जाता है। खास करके जिस कार्यमें कर्ताकी बदनामी हो ऐसे कार्यके लिये तो उसीको चुना जाता है, जो अत्यन्त ही अन्तरंग हो। रामका लोकापवाद मिटानेके लिये श्रीसीताजी वनवास स्वीकार करती हुई सन्देशा कहलाती हैं—'मैं जानती हूँ कि मेरी शुद्धतामें आपको सन्देह नहीं है, केवल आप लोकापवादके भयसे मुझे त्याग रहे हैं। तथापि मेरे तो आप ही परमगति हैं। आपका लोकापवाद दूर हो, मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी शोक नहीं है।' सीताजी यहाँ 'रामकाज' के लिये कष्ट सहती हैं, परन्तु उनकी बदनामी नहीं होती, प्रशंसा होती है। उनके पातिव्रतकी आजतक पूजा होती है, परन्तु कैकेयीका कार्य इससे अत्यन्त महान् है। उसे तो 'रामकाज' के लिये रामविरोधी मशहूर होना पड़ेगा। **'यावच्चन्द्रदिवाकरौ'** गालियाँ सहनी पड़ेंगी। पापिनी, कलंकिनी, कुलघातिनीकी उपाधियाँ ग्रहण करनी पड़ेंगी, वैधव्यका दु:ख स्वीकारकर पुत्र और नगरनिवासियोंद्वारा तिरस्कृत होना पड़ेगा। तथापि 'रामकाज' जरूर करना पड़ेगा। यही रामकी इच्छा है और इस 'रामकाज' के लिये रामने कैकेयीको ही प्रधान पात्र चुना है। इसीसे यह

कलंकका चिर टीका उसीके सिर पोता गया है। यह इसीलिये कि वह परब्रह्म श्रीरामकी परम अन्तरंग प्रेमपात्री है, वह श्रीरामकी लीलामें सहायिका है, उसे बदनामी खुशनामीसे कोई काम नहीं, उसे तो सब कुछ सहकर भी 'रामकाज' करना है। रामरूपी सूत्रधार जो कुछ भी पार्ट दें, उनके नाटककी सांगताके लिये उनके आज्ञानुसार इसे तो वही खेल खेलना है, चाहे वह कितना ही क्रूर क्यों न हो। कैकेयी अपना पार्ट बड़ा अच्छा खेलती है। राम अपने 'काज' के लिये सीता और लक्ष्मणको लेकर खुशी-खुशी वनके लिये विदा होते हैं। कैकेयी इस समय पार्ट खेल रही थी, इसलिये उसको उस सूत्रधारसे—नाटकके स्वामीसे—जिसके इंगितसे जगन्नाटकका प्रत्येक परदा पड़ रहा है और उसमें प्रत्येक क्रिया सुचारुरूपसे हो रही है—एकान्तमें मिलनेका अवसर नहीं मिलता। इसीलिये वह भरतके साथ वन जाती है और वहाँ श्रीरामसे—नाटकके स्वामीसे एकान्तमें मिलकर अपने पार्टके लिये पूछती है और साधारण स्त्रीकी भाँति लीलासे ही लीलामयसे उनको दुःख पहुँचानेके लिये क्षमा चाहती है, परन्तु लीलामय भेद खोलकर साफ कह देते हैं कि 'यह तो मेरा ही कार्य था, मेरी ही इच्छासे, मेरी मायासे हुआ था, तुम तो निमित्तमात्र थी, सुखसे भजन करो और मुक्त हो जाओ।' वहाँका प्रसंग इस प्रकार है—जब भरत श्रीरामको लौटा ले जानेका बहुत आग्रह करते हैं, किसी प्रकार नहीं मानते, तब भगवान् श्रीरामका रहस्य जाननेवाले मुनि वसिष्ठ श्रीरामके संकेतसे भरतको अलग ले जाकर एकान्तमें समझाते हैं—'पुत्र! आज मैं तुझे एक गुप्त रहस्य सुना रहा हूँ। श्रीराम साक्षात् नारायण हैं, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इनसे रावण-वधके लिये प्रार्थना की थी, इसीसे इन्होंने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लिया है।

श्रीसीताजी साक्षात् योगमाया हैं। श्रीलक्ष्मण शेषके अवतार हैं, जो सदा श्रीरामके साथ उनकी सेवामें लगे रहते हैं। श्रीरामको रावणका वध करना है, इससे वे जरूर वनमें रहेंगे। तेरी माताका कोई दोष नहीं है—

कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम्॥
सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम्।
तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने॥

(अ० रा० २।९।४५-४६)

'कैकेयीने जो वरदान माँगे और निष्ठुर वचन कहे थे, सो सब देवका कार्य था ('रामकाज' था); नहीं तो भला, कैकेयी कभी ऐसा कह सकती? अतएव तुम रामको अयोध्या लौटा ले चलनेका आग्रह छोड़ दो।'

रास्तेमें भरद्वाजमुनिने भी संकेतसे कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति॥
देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम्।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह॥

(वा० रा० २।९२।३०-३१)

'हे भरत! तू माता कैकेयीपर दोषारोपण मत कर। रामका वनवास समस्त देव, दानव और ऋषियोंके परम हित और परम सुखका कारण होगा।' अब श्रीवसिष्ठजीसे स्पष्ट परिचय प्राप्तकर भरत समझ जाते हैं और श्रीरामकी चरण-पादुका सादर लेकर अयोध्या लौटनेकी तैयारी करते हैं। इधर कैकेयीजी एकान्तमें श्रीरामके समीप जाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाती हुई व्याकुल हृदयसे—

प्राञ्जलिः प्राह हे राम तव राज्यविघातनम्॥
कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचेतसा।

क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः॥
त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः।
मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत्।
त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधु वा॥
त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करोति किम्।
यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया॥
त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी।
त्वयैव प्रेरिताहं च देवकार्यं करिष्यता॥
पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते।
छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम्॥
त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता।

(अ० रा० २। ९। ५५—५९, ६१-६२)

—हाथ जोड़कर बोली—'हे श्रीराम! तुम्हारे राज्याभिषेकमें मैंने विघ्न किया था। उस समय मेरी बुद्धि देवताओंने बिगाड़ दी थी और मेरा चित्त तुम्हारी मायासे मोहित हो गया था। अतएव मेरी इस दुष्टताको तुम क्षमा करो; क्योंकि साधु क्षमाशील हुआ करते हैं। फिर तुम तो साक्षात् विष्णु हो। इन्द्रियोंसे अव्यक्त सनातन परमात्मा हो, मायासे मनुष्यरूपधारी होकर समस्त विश्वको मोहित कर रहे हो। तुम्हींसे प्रेरित होकर लोग साधु-असाधु कर्म करते हैं। यह सारा विश्व तुम्हारे अधीन है, अस्वतन्त्र है, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे कठपुतलियाँ नचानेवालेके इच्छानुसार ही नाचती हैं, वैसे ही यह बहुरूपधारिणी नर्तकी माया तुम्हारे ही अधीन है। तुम्हें देवताओंका कार्य करना था, अतएव तुमने ही ऐसा करनेके लिये मुझे प्रेरणा की। हे विश्वेश्वर! हे अनन्त! हे जगन्नाथ! मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। तुम अपनी तत्त्वज्ञानरूपी निर्मल

तीक्ष्णधार-तलवारसे मेरी पुत्रवित्तादि विषयोंमें स्नेहरूपी फाँसीको काट दो। मैं तुम्हारे शरण हूँ।'

कैकेयीके स्पष्ट और सरल वचन सुनकर भगवान्ने हँसते हुए कहा—

यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत्।
मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव।
गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम्॥
सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात्।
अहं सर्वत्र समदृग् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा॥
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम्।
मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम्॥
सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः।
दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम्॥
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः।

(अ० रा० २। ९। ६३—६८)

'हे महाभागे! तुम जो कुछ कहती हो सो सत्य है, इसमें किंचित् भी मिथ्या नहीं। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी ही प्रेरणासे उस समय तुम्हारे मुखसे वैसे वचन निकले थे। इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं। (तुमने तो मेरा ही काम किया है।) अब तुम जाओ और हृदयमें सदा मेरा ध्यान करती रहो। तुम्हारा स्नेहपाश सब ओरसे छूट जायगा और मेरी इस भक्तिके कारण तुम शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी। मैं सर्वत्र समदृष्टि हूँ। मेरे न तो कोई द्वेष्य है और न प्रिय। मुझे जो भजता है, मैं भी उसको भजता हूँ। परन्तु हे माता! जिनकी बुद्धि मेरी मायासे मोहित है, वे मुझको तत्त्वसे न जानकर सुख-दुःखोंका भोक्ता साधारण

मनुष्य मानते हैं। यह बड़े सौभाग्यका विषय है कि तुम्हारे हृदयमें मेरा यह भव-नाशक तत्त्वज्ञान हो गया है। अपने घरमें रहकर मेरा स्मरण करती रहो। तुम कभी कर्मोंसे लिप्त नहीं होओगी।'

भगवान्‌के इन वचनोंसे कैकेयीकी स्थितिका पता लगता है। भगवान्‌के कथनका सार यही है कि तुम 'महाभाग्यवती' हो, लोग चाहे तुम्हें अभागिनी मानते रहें। तुम निर्दोष हो, लोग चाहे तुम्हें दोषी समझें। तुम्हारे द्वारा तो यह कार्य मैंने ही करवाया था। जिन लोगोंकी बुद्धि मायामोहित है, वही मुझको मामूली आदमी समझते हैं, तुम्हारे हृदयमें तो मेरा तत्त्वज्ञान है, तुम धन्य हो!

भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर कैकेयी आनन्द और आश्चर्यपूर्ण हृदयसे सैकड़ों बार साष्टांग प्रणाम और प्रदक्षिणा करके सानन्द भरतके साथ अयोध्या लौट गयी।

उपर्युक्त स्पष्ट वर्णनसे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि कैकेयीने जान-बूझकर स्वार्थबुद्धिसे कोई अनर्थ नहीं किया था। उसने जो कुछ किया सो श्रीरामकी प्रेरणासे 'रामकाज' के लिये! इस विवेचनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि कैकेयी बहुत ही उच्च कोटिकी महिला थी। वह सरल, स्वार्थहीन, प्रेममय, स्नेहवात्सल्ययुक्त, धर्मपरायण, बुद्धिमती, आदर्श पतिव्रता, निर्भय वीरांगना होनेके साथ ही भगवान् श्रीरामकी अनन्यभक्त थी। उसकी जो कुछ बदनामी हुई और हो रही है, सो सब श्रीरामकी अन्तरंग प्रीतिके निदर्शनरूप ही है। जिस देवीने जगत्‌के आधार प्रेमके समुद्र अनन्यरामभक्त भरतको जन्म दिया, वह देवी कदापि तिरस्कारके योग्य नहीं हो सकती, ऐसी प्रात:स्मरणीया देवीके चरणोंमें बारम्बार अनन्त प्रणाम है।

भक्तिमयी सुमित्रा देवी

जो केवल इसीलिये गर्भ-धारण करती हैं और इसीलिये पुत्र-प्रसव करती हैं कि उनका पुत्र माता-पिता, सुख-सम्पत्ति, विलास-यौवन, घर-परिवार, नव-विवाहिता पत्नी—सभीके मोहको तृणवत् त्यागकर स्वेच्छासे ही विराग, तपस्या एवं संयमको स्वीकार करके केवल भगवान्‌की ही सेवा करे, भगवान्‌की सेवा ही जिसके जीवनका एकमात्र लक्ष्य हो और जो भगवान्‌की सेवामें ही अपनेको खपा दे—ऐसी परम सौभाग्यवती लक्ष्मण-शत्रुघ्न-जननी सुमित्रा-सरीखी माताएँ जगत्‌में बिरली ही होती हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र जब वन जाने लगे और जब श्रीरामजीके आदेशसे एकमात्र रामको परम वस्तु माननेवाले लक्ष्मणजी माता सुमित्रासे आज्ञा माँगने गये, उस समय उस विशालहृदया यथार्थजननी मंगलमयी माताने जो कुछ कहा उसमें भक्ति, प्रीति, त्याग, बलिदान, समर्पण, नारी-जीवनकी सफलता, पुत्रका स्वरूप—सभीका परम श्रेष्ठ सार आ गया है। माताका वह उपदेश यदि जगत्‌की सभी माताओंके लिये आदर्श बन जाय तो यही जगत् वैकुण्ठ बन सकता है। माता सुमित्रा कहती हैं—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

'बेटा! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं! जहाँ श्रीरामजीका निवास हो वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्यका प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वनको जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है। गुरु, पिता, माता, भाई, देवता, स्वामी—इन सबकी सेवा प्राणके समान करनी चाहिये। फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणोंके भी प्रिय हैं, हृदयके भी जीवन हैं और सभीके स्वार्थरहित सखा हैं। जगत्में जहाँतक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजीके नातेसे ही [पूजनीय और परमप्रिय] माननेयोग्य हैं। हृदयमें ऐसा जानकर, बेटा! उनके साथ वन जाओ और जगत्में जीनेका लाभ उठाओ! मैं बलिहारी जाती हूँ। [हे पुत्र!] मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्यके पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्तने छल छोड़कर श्रीरामके चरणोंमें स्थान प्राप्त किया है। संसारमें वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजीका भक्त हो। नहीं तो जो रामसे विमुख पुत्रसे अपना हित मानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशुकी भाँति उसका

ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है। तुम्हारे ही भाग्यसे श्रीरामजी वनको जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो। राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह— इनके वश स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकारके विकारोंका त्यागकर मन, वचन और कर्मसे श्रीसीतारामजीकी सेवा करना, तुमको वनमें सब प्रकारसे आराम है, जिसके साथ श्रीरामजी और सीताजीरूप पिता-माता हैं। पुत्र! तुम वही करना जिससे श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है।'

सिद्धान्त तथा उपदेशका उपसंहार करती हुई माता अन्तमें आशीर्वाद देती हुई कहती हैं—

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

'बेटा! मेरा यही उपदेश है (अर्थात् तुम वही करना) जिससे वनमें तुम्हारे कारण श्रीरामजी और श्रीसीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगरके सुखोंकी याद भूल जायँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजीने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्रीलक्ष्मणजी)-को सीख देकर (वन जानेकी) आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्रीसीताजी और श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित नया-नया हो।' माताकी क्या सुन्दर आशीष है। धन्य है।

प्रिय पुत्र लक्ष्मणको रामकी सेवामें भेजकर ही माता निरस्त नहीं हो जाती, जब लक्ष्मणके शक्ति लगने और रणभूमिमें मूर्च्छित होकर गिर जानेका संवाद मिलता है, तब वे अपनी

कोखको सफल हुई मानकर उनका रोम-रोम प्रसन्नतासे खिल उठता है। पर साथ ही यह चिन्ता आ सताती है कि मेरे राम शत्रुओंमें अकेले रह गये—और शत्रुघ्नको वहाँ भेजनेके लिये निश्चय करके कहती हैं—'बेटा! हनुमान्‌के साथ जाओ।' माताका आदेश सुनते ही शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं और शरीरसे पुलकित होकर ऐसे प्रसन्न होते हैं मानो विधाताके विधानसे उनके पूरे दाव पड़ गये हों।

'तात! जाहु कपि सँग', रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं॥

श्रीहनुमान्‌जीके विनय करने और आश्वासन देनेपर माता मानती हैं।

सचमुच ऐसी ही माता पुत्रवती हैं और ऐसी मातासे जन्म धारण करनेवाले ही वास्तवमें पुत्र हैं—इन माता-पुत्रोंके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार!

श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिलाका महत्त्व

रामायणमें रामसेवाव्रती श्रीलक्ष्मणजीका, उनकी धर्मपत्नी श्रीउर्मिलादेवीजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि उर्मिलाके चरित्रका तो रामायणमें कहीं वर्णन ही नहीं है, फिर वह अनुपम कैसे हो गया? वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें कविका मौनावलम्बन ही चरित्रकी परम उच्चताका सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् त्यागपूर्ण है कि कविकी लेखनी उसका चित्रण करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीरामके साथ वन जानेके लिये आग्रह करती हैं और न ले जानेपर प्राण-परित्यागके लिये प्रस्तुत हो जाती हैं। यद्यपि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने पहले वचनोंको पलटकर उन्हें साथ ले गये। श्रीरामने जो सीताजीको घर-नैहरमें रहनेका उपदेश दिया था, सो तो लोकशिक्षा, सती पतिव्रताके परम आदर्शकी स्थापना और पत्नीके प्रति पतिके कर्तव्यकी सत्-शिक्षाके लिये था। वास्तवमें सीताको श्रीरामजी वनमें ले जाना ही चाहते थे; क्योंकि उनके गये बिना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए बिना उसकी मृत्यु असम्भव थी, जो अवतार-धारणका एक प्रधान कार्य था। श्रीसीताजी साक्षात् जगन्नायिका और श्रीराम सच्चिदानन्दघन थे। वह उनसे अलग कभी रह ही नहीं सकतीं। केवल पातिव्रतकी बात होती तो सीताजी भी शायद उर्मिलाकी भाँति अयोध्यामें रह जातीं। उर्मिला सीताजीकी छोटी बहिन थीं, परम पतिव्रता थीं। बड़ी बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराममें अनुरक्ता और उनकी सेवाव्रतधारिणी थीं, वैसे ही उर्मिला भी थीं; वह भी सीताकी भाँति ही साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह कर सकती थीं, परंतु उनके

घर रहनेमें ही श्रीरामकाजमें सुविधा थी, जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पतिका एकमात्र धर्म था और जिसमें उर्मिला पूर्ण सहमत और सहायक थीं। इन्द्रजित्—मेघनादको वरदान था कि जो महापुरुष लगातार बारह वर्षतक फल-मूल खायेगा, निद्राका त्याग करेगा और अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करेगा, उसीके हाथोंसे मेघनादका मरण होगा। इसलिये जैसे रावण-वधमें कारण बननेके लिये सीताजीका श्रीराम-लीलामें सहयोगिनी बनकर वन जाना आवश्यक था, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी रामलीलामें शामिल होनेके लिये तीव्र महाव्रत-पालनपूर्वक मेघनाद-वधके लिये वन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिलाजीको भी रामलीलाको सुचारुरूपसे सम्पन्न करानेके लिये ही, जो दम्पतिके जीवनका व्रत था, घरपर रहना आवश्यक था। उर्मिलाजी साथ जातीं, तब भी लक्ष्मणजीका महाव्रत पालन होना कठिन था और वे घरपर रहते तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीलक्ष्मणजीने उर्मिलाजीको अवश्य समझा दी होगी या महान् विभूति होनेके कारण वे इस बातको समझती ही होंगी। इसीसे उन्होंने पतिके साथ जानेके लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पातिव्रत-धर्मका वैसा ही पालन किया, जैसा श्रीसीताजीने साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह करके किया था। घर रहनेमें ही पति श्रीलक्ष्मणजीका सेवाधर्म सम्पन्न होता है, जिन श्रीरामकी सेवाके लिये लक्ष्मणजी अवतीर्ण हुए थे, वह सेवाकार्य इसीमें सफल होता है। यह बात जाननेके बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिला कैसे कुछ कह सकती थीं? वे आजकलकी भाँति भोगकी भूखी तो थीं ही नहीं। पतिकी धर्मरक्षामें सहायक होना ही पत्नीका धर्म है, इस बातको वे खूब समझती थीं और यही उर्मिलाजीने किया।

लोग कहते हैं कि 'लक्ष्मण बड़े निष्ठुर थे, राम तो सीताको साथ ले गये, परंतु लक्ष्मणने तो उर्मिलासे बाततक नहीं की।' पर वे क्या बात करते, वे इस बातको खूब जानते थे कि मेरा और मेरी पत्नीका एक ही धर्म है। मेरे धर्मपालनमें मद्गतप्राणा कर्तव्यपरायणा प्रेममयी उर्मिलाको सदा ही बड़ा आनन्द है। वह धर्मके लिये सानन्द मेरा बिछोह सह सकती है। जनकपुरसे ब्याहकर आनेके बाद बारह वर्षोंमें लक्ष्मणजीकी अनुगामिनी सती उर्मिलाने अपना रामसेवा-धर्म निश्चय कर लिया था, उसी निश्चयके अनुसार पतिको रामसेवामें भेजनेके लिये वीरांगना उर्मिला भी उसी प्रकार सम्मत और प्रसन्न थीं, जैसे लक्ष्मण-माता वीर-प्रसविनी देवी सुमित्राजी प्रसन्न थीं। धर्मपरायणा वीरांगनाएँ अपने पति-पुत्रोंको हँसते-हँसते रणांगणमें भेजा ही करती हैं, वैसे ही यहाँ सुमित्रा और उर्मिलाने भी किया। अवश्य ही उर्मिला कुछ बोली नहीं, परंतु यहाँ न तो बोलनेका अवकाश ही था और न धर्ममें नित्य हार्दिक सम्मति होनेके कारण बोलनेकी आवश्यकता ही थी तथा न मर्यादा ही ऐसी आज्ञा देती थी। सेवा-धर्ममें तत्पर निःस्वार्थ सेवकको तुरंत करनेयोग्य प्रबल मनचाहा सेवाकार्य सामने आ पड़नेपर सलाह-मशविरेके लिये न तो अवकाश ही रहता है और न उसकी सहधर्मिणी पत्नी भी इससे दुःख मानती है; क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिसे भलीभाँति परिचित होती है और उसके प्रत्येक त्यागपूर्ण महान् कार्यका अनुमोदन करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात और है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परंतु परतन्त्र सेवापरायण लक्ष्मण भी यदि उर्मिलाको साथ ले जाना चाहते तो यह अनुचित होता, उन्हें रामजीकी सम्मति लेनी पड़ती, जहाँ वनमें श्रीरामजी सीताजीको साथ ले जानेमें ही आपत्ति करते थे, वहाँ

उर्मिलाको साथ ले जानेमें कैसे सहमत होते। जो कार्य स्वामीकी रुचिके प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सच्चे सेवकके चित्तमें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार पतिकी रुचिके प्रतिकूल कल्पना सती पतिव्रता पत्नीके हृदयमें नहीं उठ सकती। उर्मिला परम पतिव्रता थीं, लक्ष्मण उनको जानते थे। धर्मपालनमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मणजी सेवाके लिये वन जाना चाहते थे, सैरके लिये नहीं। पत्नीको साथ ले जानेसे उसकी देखभालमें भी इनका समय जाता तथा दो स्त्रियोंके सँभालनेका भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें कभी नहीं डाल सकता, लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनों ही इस बातको जरूर समझते थे। अतएव उन्होंने कोई निष्ठुरताका बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनोंकी सच्ची महिमा है।

वनवासमें श्रीलक्ष्मणजीके व्रतपालनका महत्त्व देखिये। वे दिन-रात श्रीसीतारामके पास रहते हैं। कन्द-मूल-फल ला देना, पूजाकी सामग्री जुटा देना, आश्रमको झाड़ना-बुहारना, वेदिकापर चौका लगा देना, श्रीसीतारामकी रुचिके अनुसार उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और दिन-रात सजग रहकर वीरासनसे बैठे, राममें मन लगाये, राम-नाम जपते हुए पहरा देना ही उनका कार्य है। वे अपने कार्यमें बड़े ही तत्पर हैं। ब्रह्मचर्यव्रतका पता तो इसीसे लग जाता है कि माता सीताकी सेवामें सदा प्रस्तुत रहनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी अंगका कभी दर्शन नहीं किया। यह बात इसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके। जब रावण श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने पहाड़पर बैठे हुए वानरोंके दलमें कुछ गहने डाल दिये थे। श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनुमान्‌जीकी प्रेरणासे सुग्रीवके पास पहुँचे, तब सुग्रीवने श्रीरामको वे गहने दिखलाये। श्रीरामके पूछनेपर लक्ष्मणजी बोले—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

(वा० रा० ४।६।२२-२३)

'स्वामिन्! मैं इन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैंने तो प्रतिदिन चरणवन्दनके समय माताजीके नूपुर देखे हैं, अतः उन्हें पहचान सकता हूँ।' आजकलके देवरोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। श्रीलक्ष्मणजीके इस महान् व्रतपर श्रीरामका बड़ा भारी विश्वास था, इस बातका पता इसीसे लगता है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके साथ सीताजीको अकेले बेधड़क छोड़ देते थे। जब खर-दूषण भगवान्‌के साथ युद्धके लिये आये थे, तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें एकान्त गिरिगुहामें भेज दिया था—

'राम बोलाइ अनुज सन कहा'— 'लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर।'

मायामृगको मारनेके समय भी सीताके पास आप लक्ष्मणजीको छोड़ गये थे और निर्वासनके समय भी लक्ष्मणजीको ही सीताके साथ भेजा था।

लक्ष्मणजीका सेवा-व्रत तपपूर्ण था। उन्होंने बारह सालतक लगातार श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की। इसी कारण वे मेघनादको मारकर राम-काजमें सहायक बन सके थे। तपस्यामें उनका उद्देश्य भी यही था, क्योंकि वे श्रीरामको छोड़कर दूसरी बात न तो जानते थे और न जानना चाहते ही थे। उन्होंने स्वयं कहा है—

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥

श्रीशत्रुघ्नजी

महामना श्रीशत्रुघ्नजी भगवान् श्रीरामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण तीनोंसे छोटे थे। श्रीसुमित्राजीके पुण्यवान् पुत्र थे। इनके सम्बन्धमें रामायणमें जो कुछ वर्णन आया है, उससे यही पता लगता है कि श्रीशत्रुघ्नजी बहुत थोड़ा बोलनेवाले, अत्यन्त तेजस्वी, वीर, सेवापरायण, रामदासानुदास, चुपचाप काम करनेवाले, सच्चे सत्पुरुष थे। श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न दोनों ही भाइयोंने अपना जीवन परम पवित्र सेवामें बिताया, परंतु लक्ष्मणकी सेवासे भी शत्रुघ्नकी सेवाका महत्त्व एक प्रकारसे अधिक है। श्रीलक्ष्मण श्रीरामके सेवक हैं, परंतु शत्रुघ्न तो श्रीराम-सेवक भरतजीके चरण-सेवक और साथी हैं। छायाकी भाँति उनके साथ रहते और चुपचाप आज्ञानुसार सेवा किया करते हैं। ये बड़े संकोची हैं, अपनी ओरसे कभी किसी कामके बीचमें नहीं बोलते। किसीपर क्रोध नहीं करते, अपनी ओरसे आगे होकर कुछ भी नहीं करते। सेवकोंके सेवकका यही तो धर्म है।

श्रीशत्रुघ्नजीके अपनी ओरसे बोलनेके विशेष अवसर दो मिलते हैं। प्रथम, जब श्रीभरतजी ननिहालसे आकर माता कैकेयीसे मिलते हैं और कैकेयी पाषाण-हृदया बनकर महाराज दशरथकी मृत्यु और श्रीराम-लक्ष्मणके वन जानेका विवरण सुनाती है और कहती है कि 'बेटा! यह सब मैंने तेरे ही लिये किया है'—

तात बात मैं सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥

तब भरत शोकाकुल होकर विलाप करते और आवेशमें आकर माताको भला-बुरा कहने लगते हैं। शत्रुघ्न भी माताकी कुटिलतापर अत्यन्त क्षुब्ध हैं, शरीरमें आग लग रही है, परंतु उनका तो बोलनेका कुछ अधिकार है ही नहीं।

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥

इसी समय कुबरी मन्थरा सज-धजकर वहाँ आती है। वह भरतको अपनी ही प्रकृतिके अनुसार स्वार्थी और राज्यलोभी समझती है। वह समझती है कि भरतके लिये राज्यका सारा सामान मैंने ही बनाया है, वह मुझे इनाम देगा, इसीलिये बनठनकर आती है।

हँसती-उछलती सजी-धजी कुबरीको देखकर शत्रुघ्नजी क्रोधको नहीं सँभाल सके—

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भर महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥

उपयुक्त इनाम मिल गया। दयामय भरतजीने मन्थराको छुड़ा दिया।

दूसरे, श्रीराम अयोध्याके सिंहासनपर आसीन हैं, तीनों भाई सेवा और धर्मयुक्त शासनमें सहायता करते हैं। एक समय तपस्वियोंने आकर श्रीरामचन्द्रसे लवणासुरके अत्याचारोंका वर्णन करते अपना दुखड़ा सुनाया और उसे मारनेके लिये प्रार्थना की। दुष्टदर्पहारी शिष्टरक्षक भगवान् श्रीरामने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और दरबारमें पूछा कि 'लवणासुरको वध करनेका श्रेय तुमलोगोंमें कौन लेना चाहते हैं? वहाँकी समृद्धिका अधिकारी कौन होना चाहते हैं।' भरत या शत्रुघ्न।

श्रीभरतने कहा कि 'मैं लवणासुरका वध कर सकता हूँ' इसपर शत्रुघ्नजीने प्रार्थना की कि 'प्रभो! श्रीभरतजी बहुत काम कर चुके हैं। आपके वनवासके समय इन्होंने अयोध्याका पालन किया, अनेक प्रकार दुःख सहे, नन्दीग्राममें कुशकी शय्यापर सोये, फल-मूलका आहार किया, जटा रखी, वल्कल पहने, सब कुछ किया। अब मेरी प्रार्थना है कि मेरे रहते इन्हें युद्धके लिये न भेजकर मुझे ही आज्ञा दीजिये।'

शत्रुघ्नजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामने उनका प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा—'भाई, तुम्हीं जाकर दैत्यका वध करो, मैं तुम्हें मधुदैत्यके सुन्दर नगरका राजा बनाता हूँ।' श्रीराम जानते थे कि शत्रुघ्न दुष्ट राक्षसका वध करना चाहते हैं, उन्हें राज्यका लोभ नहीं है। इसलिये पहलेसे ही कह दिया कि 'श्रीवसिष्ठ आदि ऋषि मन्त्र और विधिपूर्वक तुम्हारा अभिषेक करेंगे। मैं जो कुछ कहूँ सो तुम्हें स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि बालकोंको गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करना ही उचित है।'

इसपर वीर्य-सम्पन्न श्रीशत्रुघ्नजी बड़े ही संकोचमें पड़कर धीरेसे कहने लगे—'महाराज! बड़े भाइयोंके रहते राजगद्दीपर बैठना मैं अधर्म समझता हूँ, जब भरतजी महाराज लवणासुरको मारनेके लिये कह रहे थे तब मुझे बीचमें नहीं बोलना चाहिये था। मेरा बीचमें बोलना ही मेरे लिये इस दुर्गतिका कारण हुआ। अब आपकी आज्ञाका उल्लंघन करना भी मेरे लिये कठिन है; क्योंकि आपसे मैं यह धर्म कई बार सुन चुका हूँ।'

इसके बाद शत्रुघ्नजी लवणासुरपर चढ़ाई करते हैं, रास्तेमें श्रीवाल्मीकिजीके आश्रममें ठहरते हैं, उसी रातको सीताके दोनों कुमारोंका जन्म होता है, जिससे शत्रुघ्नको बड़ा हर्ष होता है। फिर जाकर लवणासुरका वध करके वहाँ बारह वर्ष रहकर श्रीराम-दर्शनार्थ लौटते हैं। आते समय पुनः श्रीवाल्मीकिके आश्रममें ठहरते हैं और लव-कुशके द्वारा मुनिरचित रामायणका गान सुनकर आनन्दमें लोट-पोट हो जाते हैं, अयोध्या आकर सबसे मिलते हैं, पुनः श्रीरामकी आज्ञासे मधुपुरी लौटकर धर्मपूर्वक शासन करते हैं।

इनके जीवनसे भी मर्यादाकी बड़ी शिक्षा मिलती है।

श्रीरामप्रेमी दशरथ महाराज

जिनके यहाँ भक्तिप्रेमवश साक्षात् सच्चिदानन्दघन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, उन परमभाग्यवान् महाराज श्रीदशरथकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? महाराज दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग और मोक्षतकका संन्यास करके श्रीराम-प्रेमका आदर्श स्थापित कर दिया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनुमहाराजकी भाँति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महान् यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सदृश सद्‌गुणोंवाले, राजर्षि, त्रैलोक्यप्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय[१], अतिरथी[२], धन-धान्यके संचयमें कुबेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे।

(वा० रा० १। ६। १—५)

इनके मन्त्रिमण्डलमें महामुनि वसिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ,

१-यद्यपि रामवनवासकी घटनाके कारण कहीं-कहीं दशरथजीको कामुक बतलाया गया है। परंतु ऐसी बात नहीं थी, वे यदि कामपरायण होकर कैकेयीके वशमें होते तो यज्ञपुरुषकी खीरका आधा भाग कौसल्याको और केवल अष्टमांश ही कैकेयीको नहीं देते। यद्यपि उन्होंने बहुविवाह किये थे, जो अवश्य ही आदर्श नहीं है, परंतु यह उस समयकी एक प्रथा-सी थी। भगवान् श्रीरामने इस प्रथाको तोड़कर आदर्श सुधार किया।

२-जो दस हजार धनुर्धारियोंके साथ अकेला लड़ सकता है, उसे 'महारथी' कहते हैं और जो ऐसे दस हजार महारथियोंके साथ अकेला लोहा लेता है, वह 'अतिरथी' कहलाता है।

जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप और धर्मपाल आदि विद्याविनयसम्पन्न, अनीतिमें लजानेवाले, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, पवित्र-हृदय, शास्त्रज्ञ, शस्त्रज्ञ, प्रतापी, पराक्रमी, राजनीतिविशारद, सावधान, राजाज्ञाका अनुसरण करनेवाले, तेजस्वी, क्षमावान्, कीर्तिमान्, हँसमुख, काम-क्रोध और लोभसे बचे हुए एवं सत्यवादी पुरुषप्रवर विद्यमान थे।

(वा० रा० १। ७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा सब प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी सहायता देवतालोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृ-मातृभक्त श्रवणकुमारके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये अश्वमेध, तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आप्तोर्याम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त दस लाख दुग्धवती गायें, दस करोड़ सोनेकी मुहरें और चालीस करोड़ चाँदीके रुपये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्तिके लिये ऋष्यशृंगको ऋत्विज् बनाकर राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवतागण अपना-अपना भाग लेनेके लिये स्वयं पधारे थे। देवता और मुनि-ऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीविष्णुने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लेना स्वीकार किया और यज्ञपुरुषने स्वयं प्रकट होकर पायसान्नसे भरा हुआ सुवर्णपात्र देते हुए दशरथसे कहा कि 'राजन्! यह खीर अत्यन्त श्रेष्ठ, आरोग्यवर्धक और प्रजाकी उत्पत्ति करनेवाली है। इसको अपनी कौसल्या आदि तीनों रानियोंको खिला दो।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार कौसल्याको बड़ी समझकर उसे खीरका आधा भाग, मझली सुमित्राको चौथाई भाग और कैकेयीको आठवाँ

भाग दिया। सुमित्राजी बड़ी थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक देना उचित था, इसीलिये बचा हुआ अष्टमांश राजाने फिर सुमित्राजीको दे दिया, जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके (दो भागोंसे) लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयीके भरत हुए। इस प्रकार भगवान्‌ने चार रूपोंसे अवतार लिया।

राजाको चारों ही पुत्र परमप्रिय थे, परंतु इन सबमें श्रीरामपर राजाका विशेष प्रेम था। होना ही चाहिये; क्योंकि इन्हींके लिये तो जन्म-धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की गयी थी। वे रामका अपनी आँखोंसे क्षणभरके लिये भी ओझल होना नहीं सह सकते थे। जब विश्वामित्रजी यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामकी उम्र पन्द्रह वर्षसे अधिक थी, परंतु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनाकानी की। आखिर वसिष्ठके बहुत समझानेपर वे तैयार हुए। श्रीरामपर अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तबतक प्राणोंको रखा और अपने वचन सत्य करनेके लिये, रामके बिछुड़ते ही राम-प्रेमानलमें अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली!

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने राजा केकयके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ पुत्रके अभिषेककी रघुकुलकी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आज्ञावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्‌गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परंतु परमात्माने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्‌में आदर्श मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्‌ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं—

(१) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम।

(२) श्रीरामके वनगमनद्वारा राक्षस-वधादिरूप लीलाओंद्वारा दुष्ट-दलन।

(३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श भ्रातृ-प्रेम।

(४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग।

(५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रत-धर्म।

(६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्मप्रेम और राजनीति-कुशलता।

(७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीतिकुशलता।

(८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय 'रामकाज' करना।

(९) श्रीहनुमान्‌जीकी निष्काम-प्रेमाभक्ति।

(१०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय-प्राप्ति।

(११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता।

(१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश।

यदि भगवान् श्रीरामको वनवास न होता तो इन आदर्श मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। ये सभी मर्यादाएँ महान् और अनुकरणीय हैं।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर प्रेमकी टेक रख ली।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विरहमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान् कौन होगा, जिसने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य भावसे रामपरायण हो, रामके लिये, राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया!

श्रीरामायणमें लंका-विजयके बाद पुनः दशरथके दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे हुए दशरथजीके दर्शन कराते हैं। फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिंगन करते हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं। यहाँ लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं कि 'हे सुमित्रा-सुखवर्धन लक्ष्मण! श्रीरामकी सेवामें लगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्याण होगा। इन्द्रसहित तीनों लोक, सिद्ध पुरुष और सभी महान् ऋषि-मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभिवन्दनकर उनकी पूजा करते हैं। वेदोंमें जिन अव्यक्त अक्षर ब्रह्मको देवताओंका हृदय और गुप्त तत्त्व कहा है ये परम तपस्वी राम वही हैं।' (वा० रा० ६। ११९। २७—३०)

यहाँपर शंका होती है कि जब शुद्ध सच्चिदानन्दघन श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए दशरथने प्राणोंका त्याग किया था, तब फिर उनकी मुक्ति कैसे नहीं हुई? यदि श्रीरामनामके प्रतापसे मुक्ति नहीं होती तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि अन्तकालमें श्रीरामनाम लेनेसे समस्त बन्धन कट जाते हैं और नाम लेनेवाला परमात्माको प्राप्त होता है? और यदि राममें मन लगाकर मरनेपर भी मुक्ति नहीं होती तो फिर गीताके उस भगवत्-वचनकी व्यर्थता होती है जिसमें भगवान्ने यह कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(८। ५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मुझको स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह निःसन्देह ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।'

इन प्रश्नोंका उत्तर तो गीताके इससे अगले श्लोकमें ही मिल

जाता है। जिस प्रकारकी भावना करता हुआ मनुष्य प्राण छोड़ता है, उसी प्रकारकी गतिको प्राप्त होता है। ज्ञानमार्गी साधक अद्वैत अक्षर परब्रह्ममें चित्तकी वृत्तियोंको विलीन कर देह-त्याग करता है तो उसकी अवश्य ही 'सायुज्य' मुक्ति होती है; परंतु ऐसा हुए बिना केवल श्रीरामनामके जपसे 'सायुज्य' मुक्ति नहीं होती। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए प्राण-त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है। सच तो यह है कि बिना मन लगाये भी श्रीरामनामका अन्तकालमें उच्चारण हो जानेसे ही जीव मुक्तिका अधिकारी हो जाता है, इसीसे संतोंने अन्तमें श्रीरामनामको दुर्लभ बताया है—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

परंतु मुक्ति होती वैसी ही है, जैसी वह चाहता है। 'तो क्या मुक्ति भी कई प्रकारकी हैं? यदि कई प्रकारकी मुक्ति हैं तो फिर मुक्तिका महत्त्व ही क्या रह गया?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि 'तत्त्वबोधरूप' मुक्ति तो एक ही है, परंतु केवल तत्त्वबोध होकर 'सायुज्य' मुक्ति भी हो सकती है, जिसमें जीवकी भिन्न सत्ता यथार्थ स्व-स्वरूप परमात्म-सत्तामें अभिन्नरूपसे विलीन हो जाती है और तत्त्वका पूरा बोध होनेके साथ-ही-साथ सगुण-साकार, सौन्दर्य और माधुर्यकी पराकाष्ठा अनूपरूप भगवत्स्वरूपमें परम प्रेम होनेके कारण वह मुक्त पुरुष (सायुज्य मुक्तिरूपी धनका स्वामी होनेपर भी) भगवान्‌की सामीप्य, सालोक्य, सार्ष्टि और सारूप्य-मुक्तिका रसमय सुख भोगता है। केवल तत्त्वबोधद्वारा प्राणोंका उत्क्रमण न होकर परमात्मामें मिल जाना, यह अभेद मुक्ति और अभेद ज्ञानपूर्वक साकार ईश्वरके सेवार्थ व्यवहारमें भेद रहना, यह चतुर्विध भेदमुक्ति, ये दोनों वास्तवमें एक ही मुक्तिके दो स्वरूप हैं। परंतु शुद्ध प्रेमी भक्त इन दोनों प्रकारकी मुक्तियोंसे भी अलग

रहकर केवल भगवत्सेवामें लगा रहता है और जैसे भगवान् नित्य, मुक्त, अज, अविनाशी होते हुए भी लीलासे अवतार-शरीर धारण करके विविध कर्म करते हैं, ऐसे ही वह भक्त भी उन्हींका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाँति भगवान्‌की पवित्र लीलामें लीलासे ही लगा रहता है। वह मुक्ति नहीं चाहता। अतएव जब उसे भगवदिच्छासे, भगवदर्थ, भगवदाज्ञानुसार निर्लेपभावसे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है, तब वह भगवत्स्मरण और भगवन्नाम-गुण-कीर्तन करता हुआ ही जाता है। दूसरा काम तो उसको कोई रहता ही नहीं; क्योंकि उसकी स्थिति दृढ़ अनन्य विशुद्ध प्रेमभावसे प्रेममय परमात्मामें ही रहती है। इतना होनेपर भी उपर्युक्त कारणसे ऐसे भक्तकी अभेद मुक्ति नहीं होती। इसीलिये भगवान् शिवजी जगज्जननी उमासे दशरथजीके सम्बन्धमें कहते हैं—

तातें उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥

अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि अन्तमें श्रीरामनामका जप-कीर्तन करनेसे और श्रीराममें मन लगानेसे मुक्ति नहीं होती और इसी कारण दशरथजीकी भी मुक्ति नहीं हुई। समझना यह चाहिये कि दशरथजीको उस मुक्तिकी कोई परवा नहीं थी। वे तो रामरसके रसिक थे। इसीलिये उस रसके सामने उन्होंने मोक्षका भी जान-बूझकर ही संन्यास कर दिया। ऐसे मोक्ष-संन्यासी प्रेमी भक्तोंकी चरण-सेवाके लिये मुक्ति तो पीछे-पीछे घूमा करती है। भगवान्‌ने तो अपने श्रीमुखसे यहाँतक कह डाला है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।१४—१६)

'जिस मेरे भक्तने अपना आत्मा मुझको अर्पण कर दिया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद, चक्रवर्ती राजाका पद, पातालका राज्य, योगकी सिद्धियाँ और मोक्ष भी नहीं चाहता। उद्धवजी! मुझे आत्मस्वरूप शिवजी, संकर्षण, प्रिया लक्ष्मीजी और अपना स्वरूप भी उतने प्रिय नहीं हैं, जितने तुम-जैसे अनन्य भक्त प्रिय हैं। ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदर्शी भक्तोंकी चरण-रजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं उनके पीछे-पीछे सदा फिरता हूँ।' कैसी महिमा है!

यद्यपि भक्त अपने भगवान्‌को पीछे-पीछे फिरानेके लिये मुक्तिका तिरस्कार कर उन्हें नहीं भजते, उनका तो भगवान्‌के प्रति ऐसा अहैतुक प्रेम हो जाता है कि वे भगवान्‌के सिवा दूसरी ओर ताकना ही नहीं जानते। बस, यह अहैतुक प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, यह जानकर वे मुक्तिका निरादर कर भक्ति करते हैं।

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥

क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे हैं—जिनको देखकर निर्ग्रन्थ आत्माराम मुनियोंको भी उनकी अहैतुकी भक्ति करनी पड़ती है।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥

श्रीरामकी पुनः लंका-यात्रा और सेतु-भंग

एक समय भगवान् श्रीरामको राक्षसराज विभीषणका स्मरण हो आया। उन्होंने सोचा कि 'विभीषण धर्मपूर्वक शासन कर रहा है कि नहीं। देव-विरोधी व्यवहार ही राजाके विनाशका सूत्र है। मैं विभीषणको लंकाका राज्य दे आया हूँ, अब जाकर उसे सँभालना भी चाहिये। कहीं राज्यमदमें उससे अधर्माचरण तो नहीं हो रहा है। अतएव मैं स्वयं लंका जाकर उसे देखूँगा और हितकर उपदेश दूँगा, जिससे उसका राज्य अनन्तकालतक स्थायी रहेगा।' श्रीराम यों विचार कर ही रहे थे कि भरतजी आ पहुँचे। भरतजीके नम्रतासे पूछनेपर श्रीरामने कहा—'भाई! तुमसे मेरा कुछ भी गोपनीय नहीं है, तुम और यशस्वी लक्ष्मण मेरे प्राण हो। मैंने निश्चय किया है कि मैं लंका जाकर विभीषणसे मिलूँ, उसकी राज्य-पद्धति देखूँ और उसे कर्तव्यका उपदेश दूँ।' भरतने कभी लंका नहीं देखी थी, इससे उन्होंने भी साथ चलनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीरामने स्वीकार कर लिया और लक्ष्मणको सारा राज्यभार सौंपकर दोनों भाई पुष्पक विमानपर चढ़ लंकाके लिये विदा हुए। पहले भरतके दोनों पुत्रोंकी राजधानीमें जाकर उनसे मिले और उनके कार्यका निरीक्षण किया, तदनन्तर लक्ष्मणके पुत्रोंकी राजधानीमें गये और वहाँ छः दिन ठहरकर सब कुछ देखा-भाला। इसके बाद भरद्वाज और अत्रिके आश्रमोंको गये। फिर आगे चलकर श्रीरामने चलते हुए विमानपरसे वे सब स्थान दिखलाये जहाँ श्रीसीताजीका हरण हुआ था, जटायुकी मृत्यु हुई थी, कबन्धको मारा था और वालिका वध किया था। तत्पश्चात्

किष्किन्धापुरीमें जाकर राजा सुग्रीवसे मिले। सुग्रीवने राजघरानेके सब स्त्री-पुरुषों, नगरोंके समस्त नर-नारियोंसमेत श्रीराम और भरतका बड़ा भारी स्वागत किया। फिर सुग्रीवको साथ लेकर विमानपरसे भरतको विभिन्न स्थान दिखलाते और उनकी कथा सुनाते हुए लंकामें जा पहुँचे, विभीषणको दूतोंने यह शुभ समाचार सुनाया। श्रीरामके लंका पधारनेका संवाद सुनकर विभीषणको बड़ी प्रसन्नता हुई। सारा नगर बात-की-बातमें सजाया गया और अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर विभीषण अगवानीके लिये चले। सुमेरुस्थित सूर्यकी भाँति विमानस्थ श्रीरामको देखकर साष्टांग प्रणामपूर्वक विभीषणने कहा—'प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरे सारे मनोरथ सिद्ध हो गये; क्योंकि आज मैं जगद्वन्द्य अनिन्द्य आप दोनों स्वामियोंके चरण-दर्शन कर रहा हूँ। आज स्वर्गवासी देवगण भी मेरे भाग्यकी श्लाघा कर रहे हैं। मैं आज अपनेको त्रिदशपति इन्द्रकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझ रहा हूँ।' सर्वरत्नसुशोभित उज्ज्वल भवनमें महोत्तम सिंहासनपर श्रीराम विराजे। विभीषण अर्घ्य देकर हाथ जोड़ भरत और सुग्रीवकी स्तुति करने लगे। लंकानिवासी प्रजाकी रामदर्शनार्थ भीड़ लग गयी। प्रजाने विभीषणको कहलाया—'प्रभो! हमको उस अनोखी रूप-माधुरीको देखे बहुत दिन हो गये। युद्धके समय हम सब देख भी नहीं पाये थे। आज हम दीनोंपर दयाकर हमारा हित करनेके लिये करुणामय हमारे घर पधारे हैं। अतएव शीघ्र ही हमलोगोंको उनके दर्शन कराइये।' विभीषणने श्रीरामसे पूछा और दयामयकी आज्ञा पाकर प्रजाके लिये द्वार खोल दिये। लंकाके नर-नारी श्रीराम-भरतकी झाँकी देखकर पवित्र और मुग्ध हो गये। यों तीन दिन बीत गये। चौथे दिन रावणकी माता कैकसीने

विभीषणको बुलाकर कहा—'बेटा! मैं भी श्रीरामके दर्शन करूँगी। उनके दर्शनसे महामुनिगण भी महापुण्यके भागी होते हैं। श्रीराम साक्षात् सनातन विष्णु हैं, वे ही यहाँ चार रूपोंमें अवतीर्ण हैं। सीताजी स्वयं लक्ष्मी हैं। तेरे भाई रावणने यह रहस्य नहीं जाना। तेरे पिताजीने कहा था कि रावणको मारनेके लिये भगवान् विष्णु रघुवंशमें दशरथके यहाँ प्रादुर्भूत होंगे।' विभीषणने कहा—'माता! आप नये वस्त्र पहनकर कंचनथालमें चन्दन, मधु, अक्षत, दधि, दूर्वाका अर्घ्य सजाकर भगवान् श्रीरामके दर्शन करें। सरमा (विभीषण-पत्नी)-को आगे कर और अन्यान्य देवकन्याओंको साथ लेकर आप श्रीरामके समीप जायँ। मैं पहले ही वहाँ चला जाता हूँ।'

विभीषणने श्रीरामके पास जाकर वहाँसे सब लोगोंको हटा दिया और श्रीरामसे कहा—'देव! रावणकी, कुम्भकर्णकी और मेरी माता कैकसी आपके चरणकमलोंके दर्शनार्थ आ रही हैं, आप कृपापूर्वक उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करें।' श्रीरामने कहा—'भाई! तुम्हारी माँ तो मेरी 'माँ' ही हैं। मैं ही उनके पास चलता हूँ, तुम जाकर उनसे कह दो।' इतना कहकर विभु श्रीराम उठकर चले और कैकसीको देखकर मस्तकसे उसे प्रणाम किया तथा बोले—'आप मेरी धर्ममाता हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अनेक पुण्य और महान् तपके प्रभावसे ही मनुष्यको आपके (विभीषण-सदृश भक्तोंकी जननीके) चरण-दर्शनका सौभाग्य मिलता है। आज मुझे आपके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे श्रीकौसल्याजी हैं, वैसे ही मेरे लिये आप हैं।' बदलेमें कैकसीने मातृभावसे आशीर्वाद दिया और भगवान् श्रीरामको विश्वपति जानकर उनकी स्तुति की। इसके बाद 'सरमा' ने भगवान्‌की स्तुति की। भरतको सरमाका परिचय जाननेकी इच्छा हुई, उनके

संकेतको समझकर 'इंगितविद्' श्रीरामने भरतसे कहा—'ये विभीषणकी साध्वी भार्या हैं, इनका नाम सरमा है। ये महाभागा सीताकी प्रिय सखी हैं और इनकी सखिता बहुत दृढ़ है।' इसके बाद सरमाको समयोचित उपदेश दिया। फिर विभीषणको विविध उपदेश देकर कहा—'निष्पाप! देवताओंका प्रियकार्य करना, उनका अपराध कभी न करना। लंकामें कभी मनुष्य आयें तो उनका कोई राक्षस वध न करने पाये।' विभीषणने आज्ञानुसार चलना स्वीकार किया।

तदनन्तर वापस लौटनेके लिये सुग्रीव और भरतसहित श्रीराम विमानपर चढ़े। तब विभीषणने कहा—'प्रभो! यदि लंकाका पुल ज्यों-का-त्यों बना रहेगा तो पृथ्वीके सभी लोग यहाँ आकर हमलोगोंको तंग करेंगे, इसलिये क्या करना चाहिये।' भगवान्‌ने विभीषणकी बात सुनकर पुलको बीचमेंसे तोड़ डाला और दस योजनके बीचके टुकड़ेके फिर तीन टुकड़े कर दिये। तदनन्तर उस एक-एक टुकड़ेके फिर छोटे-छोटे कई टुकड़े कर डाले, जिससे पुल टूट गया और यों लंकाके साथ भारतका मार्ग पुनः विच्छिन्न हो गया। यह कथा पद्मपुराणसे ली गयी है।

श्रीरामका प्रणत-रक्षा-प्रण

भगवान् श्रीरामकी शरणागतवत्सलता सुप्रसिद्ध है। जब राक्षसराज विभीषण भगवान्‌के शरण जाते हैं और जब सम्मति पूछे जानेपर सेनापति सुग्रीव विभीषणको बाँध रखनेकी राय देते हैं, तब भगवान् श्रीराम, नीतिकी दृष्टिसे सुग्रीवकी सम्मतिका सम्मान करते हुए अपना प्रण सुनाते हैं—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥

इसके बाद विभीषण आदरपूर्वक श्रीरामके सामने लाये जाते हैं और श्रीराम उनकी सच्ची शरणागतिपर मुग्ध हो अब इच्छा न रहनेपर भी उन्हें लंकाधिपति बना देते हैं। केवल मुँहसे ही 'लंकेश' नहीं कहते, परंतु '**मोर दरसु अमोघ जग माहीं**' कहकर अपने हाथसे उनके राजतिलक भी कर देते हैं। सुग्रीवको यहाँ बड़ा आश्चर्य होता है। वे सेनापतिकी हैसियतसे सोचते हैं कि अभी लंकापर विजय तो मिली ही नहीं, पहले ही विभीषणको 'लंकेश' बनाकर श्रीरामने बड़ी भारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली है। इससे सुग्रीव राजनीति-कुशलतासे बड़े ही विनम्रभावसे श्रीरामसे एकान्तमें पूछते हैं—'नाथ! विभीषणको तो शरणागतिका फल मिल गया, परंतु हे स्वामी! यदि कल इसी प्रकार रावण शरण आ जाय तो फिर क्या लंकाका राज्य उसे नहीं दिया जायगा? दिया जायगा तो स्वामीके वचन कैसे रहेंगे और यदि नहीं दिया जायगा तो रावणको संतोष कैसे होगा?' भगवान् श्रीराम सुग्रीवका आशय समझकर हँसते हुए कहते हैं—'मित्र! रामका व्रत यही है कि वह जो कुछ एक बार कह देता है उसे पलटता नहीं। लंका तो विभीषणकी ही होगी, यदि रावण आयेगा तो उसके लिये अवध तैयार है—

बात कही जो कही सो कही,
जो कही सो कही फिरि फेरि न आनन।
जो दसकंधर आन मिलै,
गढ़ लंक विभीषन, अवध दसानन॥
भरतहिं बंधु समेत कलाप,
करूँ निज बास मैं हौं गिरि कानन।
पै नहिं पावहिं लंक अबास,
कहौ सतिभाव नरेस दसानन॥

रावण शरण नहीं आया, उसने तो श्रीरामके हाथसे मरनेमें ही अपना सौभाग्य समझा और यही उसके लिये उचित था। विभीषणको जो एक बार भगवान्‌ने अपना लिया तो फिर कभी उनको नहीं भुलाया। आप उनकी सदा सुधि लेते रहे और उन्हें विपत्तियोंसे बचाते रहे।

श्रीराम-रावणका भीषण युद्ध हो रहा है, रावण बहुत क्रुद्ध होकर इतने बाण छोड़ता है कि श्रीरामका रथ एक घड़ीके लिये वैसे ही ढक जाता है जैसे कुहरेसे सूर्य। इसके बाद रावण एक शूल विभीषणपर छोड़ता है, इस शूलके लगते ही विभीषणका मरण निश्चित है, क्योंकि यह अमोघ है। भगवान् श्रीराम इस रहस्यको जानते थे। शक्ति छूटते ही श्रीरामने अपना विरद सँभाला—

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥

शरणागतकी आर्तिका नाश करनेवाले श्रीराम शरणागत भक्तका अनिष्ट कैसे देख सकते थे? जो सब ओरसे ममता हटाकर श्रीरामके चरणोंको ही ममताका एकमात्र केन्द्र बना लेता है और अपने-आपको सर्वतोभावेन उनके प्रति अर्पण कर देता

है, उसके रक्षणावेक्षणका सारा भार, योगक्षेमकी सारी जिम्मेवारी भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। इसलिये भगवान् उसी क्षण विभीषणको पीछे ढकेलकर भीषण शूलका प्रहार सहनेके लिये छाती सामने करके स्वयं खड़े हो गये। धन्य नाथ! ऐसे शरणागतवत्सल श्रीरामको भूलकर जो आपातरमणीय भोगोंमें रमते हैं, उनके समान दयनीय और कौन होगा?

एक घटना और सुनिये। एक समय श्रीरामको मुनियोंके द्वारा यह समाचार मिलता है कि लंकाधिपति विभीषण द्रविड़ देशमें कैद हैं। भगवान् श्रीराम अब नहीं ठहर सके, वे विभीषणका पता लगाने और उन्हें छुड़ानेके लिये निकल पड़े। खोजते-खोजते विप्रघोष नामक गाँवमें पहुँचे, विभीषण वहीं कैद थे। वहाँके लोगोंने श्रीरामको दिखलाया कि विभीषण जमीनके अंदर एक कोठरीमें जंजीरोंसे बँधे पड़े हैं। श्रीरामके पूछनेपर ब्राह्मणोंने कहा—'राजन्! विभीषणने ब्रह्महत्या की थी, एक अति धार्मिक वृद्ध ब्राह्मण निर्जन उपवनमें तप कर रहा था, विभीषणने वहाँ जाकर उसे पददलित करके मार डाला। ब्राह्मणकी मृत्यु होते ही विभीषणके पैर वहीं रुक गये, वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका, ब्रह्महत्याके पापसे उसकी चाल बंद हो गयी। हमलोगोंने इस दुष्ट राक्षसको बहुत मारा-पीटा, परंतु इस पापीके प्राण किसी प्रकार नहीं निकले। अब हे श्रीराम! आप पधार गये हैं, आप चक्रवर्ती राजराजेश्वर हैं। इस पापात्माका वध करके धर्मकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर श्रीराम असमंजसमें पड़ गये। एक ओर विभीषणका भारी अपराध है, और दूसरी ओर विभीषण श्रीरामका ही एक सेवक है। यहाँपर श्रीरामने ब्राह्मणोंसे जो कुछ कहा वह बहुत ही ध्यान देनेयोग्य है। शरणागत भक्तके लिये भगवान् कहाँतक करनेको तैयार रहते हैं, इस बातका पता

भगवान्‌के शब्दोंसे ही लग जायगा। भगवान् श्रीराम स्वयं अपराधीकी तरह नम्रतासे कहने लगे—

वरं ममैव मरणं मद्भक्तो हन्यते कथम्।
राज्यमायुर्मया दत्तं तथैव स भविष्यति॥
भृत्यापराधे सर्वत्र स्वामिनो दण्ड इष्यते।
रामवाक्यं द्विजाः श्रुत्वा विस्मयादिदमब्रुवन्॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

'हे द्विजवरो! विभीषणको तो मैं अखण्ड राज्य और आयु दे चुका, वह तो मर नहीं सकता। फिर उसके मरनेकी ही क्या जरूरत है? वह तो मेरा भक्त है, भक्तके लिये मैं स्वयं मर सकता हूँ। सेवकके अपराधकी जिम्मेवारी तो वास्तवमें स्वामीपर ही होती है। नौकरके दोषसे स्वामी ही दण्डका पात्र होता है, अतएव विभीषणके बदले आपलोग मुझे दण्ड दीजिये।' श्रीरामके मुखसे ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मण-मण्डली आश्चर्यमें डूब गयी। जिसको श्रीरामसे दण्ड दिलवाना चाहते थे, वह तो श्रीरामका सेवक है और सेवकके लिये उसके स्वामी श्रीराम ही दण्ड ग्रहण करना चाहते हैं। अहा हा! स्वामी हो तो ऐसा हो। भ्रान्त मनुष्यो! ऐसे स्वामीको बिसारकर अन्य किस साधनसे सुखी होना चाहते हो?

तुलसी राम सुभाव सील लखि जौ न भगति उर आई।
तो तोहिं जनमि जाइ जननी जड़ तन तरुनता गँवाई॥

ब्राह्मण उसे दण्ड देना भूल गये। श्रीरामके मुखसे ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मणोंको यह चिन्ता हो गयी कि विभीषण जल्दी छूट जाय और अपने घर जा सके तो अच्छी बात है। वे विभीषणको छोड़ तो सकते थे परंतु छोड़नेसे क्या होता, ब्रह्महत्याके पापसे उसकी तो गति रुकी हुई थी। अतएव ब्राह्मणोंने कहा—'राम! इस प्रकार विभीषणको बन्धनमें रखना उचित नहीं है। आप

वसिष्ठप्रभृति मुनियोंकी रायसे इसे छुड़ानेका प्रयत्न कीजिये।' अनन्तर श्रीरामने प्रधान-प्रधान मुनियोंसे पूछकर विभीषणके लिये तीन सौ साठ गोदानका प्रायश्चित्त बतलाकर उसे छुड़ा लिया। प्रायश्चित्तद्वारा विशुद्ध होकर जब विभीषण भगवान् श्रीरामके सामने आकर सादर प्रणाम करने लगे, तब श्रीरामने उन्हें सभामें ले जाकर हँसते हुए यह शिक्षा दी, 'ऐसा कार्य कभी नहीं करना चाहिये। जिसमें अपना हित हो, वही कार्य करना चाहिये। राक्षसराज! तुम मेरे सेवक हो, अतएव तुम्हें साधुशील होना चाहिये, सर्वत्र दयालु रहना चाहिये।' सारांश, ऐसा कोई कार्य भक्तको नहीं करना चाहिये, जिससे उसके स्वामी भगवान्‌पर लांछन आवे!

श्रीरामका राजधर्मोपदेश

त्यागमूर्ति धर्मात्मा भरतजी चित्रकूटमें श्रीरामजीके चरणोंपर पड़े हैं, आँसुओंसे उनके चरण धो रहे हैं, भरतका वेष तपस्वियोंका-सा है, अत्यन्त शोकके कारण थोड़े ही दिनोंमें उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया है। श्रीरामने प्रेमसे उठाकर भरतको हृदयसे लगा उनका मस्तक सूँघा और गोदमें बैठाकर बड़े प्यारसे उनकी इस दशाका कारण पूछा। पहले तो पिताजीके सम्बन्धमें प्रश्न किये, फिर वे राजधर्मके विषयमें पूछने लगे। श्रीरामजीके प्रश्नोंसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि राजधर्मका क्या स्वरूप है और उस समय राजधर्म कैसा था? श्रीरामजीने भरतको विषादमय देखकर कहा—

'हे सौम्य! तुम अभी बालकके समान हो, तुम्हारे हाथसे कहीं राज्य तो नष्ट नहीं हो गया? हे सत्यपराक्रम! तुम पिताजीकी सेवा तो करते हो न? भाई! इक्ष्वाकु-कुलके आचार्य, धर्मप्रेमी, विद्वान्, महातेजस्वी महर्षि वसिष्ठजीकी पूजा तो करते हो न? माता कौसल्या, सुपुत्र उत्पन्न करनेवाली सुमित्रा और आर्या देवी कैकेयी तो तुमसे प्रसन्न हैं न? विनयी, सर्वशास्त्रज्ञ, कर्मकाण्ड-निपुण, असूयारहित, कुलगुरु वसिष्ठजीके पुत्र, जो तुम्हारे पुरोहित हैं, उनका भलीभाँति सत्कार तो करते हो न? बड़े बुद्धिमान्, वेदविधिके ज्ञाता, अत्यन्त विनयी, गुरुपुत्र सुयज्ञ, जिनकी तुमने अग्निकार्यके लिये नियुक्ति की है, हवनके पूर्व और हवनके पश्चात् तुम्हें उसकी सूचना तो देते हैं न? तुम देवता, गुरुजन, पितर, पिताके समान पूज्य बड़े-बूढ़ेलोग, वैद्य, ब्राह्मण और नौकरोंका यथायोग्य सत्कार तो करते हो न? इसी प्रकार शस्त्रास्त्रके प्रयोग जाननेवाले, अर्थशास्त्रके विद्वान्,

राजनीतिविशारद, धनुर्वेदके ज्ञाता सुधन्वा, पण्डित आदि सत्पुरुष तुम्हारे द्वारा आदर तो पाते हैं न? तुमने अपने समान विश्वासी, शूर, विद्वान्, जितेन्द्रिय, कुलीन और ऊपरकी चेष्टासे ही मनके भावको समझ जानेवाले लोगोंको तो अपना मन्त्री बनाया है न? क्योंकि शास्त्रज्ञ और मन्त्रकी रक्षा कर सकनेवाले मन्त्रियोंके द्वारा सुरक्षित मन्त्र ही राजाओंकी विजयका मूल कारण है।

'तुम जागनेके समय सोते तो नहीं हो? रातके पिछले पहर उठकर अपने कार्योंकी सिद्धिका उपाय तो सोचते हो न? अकेले ही तो किसी बातका मनमाना निश्चय नहीं कर लेते? अथवा बहुत-से अयोग्य आदमियोंके साथ मिलकर तो निश्चय नहीं करना चाहते? तुम्हारे स्थिर किये हुए विचारका काम पूरा होनेके पहले ही लोगोंको पता तो नहीं लग जाता? थोड़े प्रयत्नसे बड़ा फल उत्पन्न करनेवाला उपाय निश्चय कर लेनेपर फिर उसके अनुसार कार्य करनेमें विलम्ब तो नहीं करते? तुम्हारे सामन्त राजा तुम्हारे किसी विचारको कार्यके सिद्ध होने या सिद्धिके समीप पहुँचनेके पहले ही जान तो नहीं लेते? तुम्हारे निश्चित विषयोंको तुम्हारे द्वारा या मन्त्रियोंद्वारा कहे जानेसे पूर्व ही अनुमान, तर्क, युक्ति आदिके द्वारा कोई जान तो नहीं लेता? परंतु तुम और तुम्हारे मन्त्रीगण दूसरोंके निश्चय किये हुए विषयोंको अनुमान, युक्ति और तर्कके द्वारा जान तो लेते हो न? हजारों मूर्खोंकी अपेक्षा एक पण्डितको तुम अपने पास रखना अच्छा समझते हो न? क्योंकि संकटके समय पण्डित ही उत्तमोत्तम उपाय सोचकर राजाका महान् कल्याण करता है। राजा चाहे हजारों-लाखों मूर्खोंको अपने पास रखे, उनसे समयपर कोई सहायता नहीं मिलती; पक्षान्तरमें एक ही बुद्धिमान्, शूरवीर, दक्ष, विचक्षण मन्त्री राजा या राजपुत्रको विशाल समृद्धिकी

प्राप्ति करवा सकता है। तुम उत्तम सेवकोंको उत्तम कार्यपर, मध्यमको मध्यम कार्यपर और छोटे सेवकोंको छोटे कार्यपर यानी जिसके योग्य जो कार्य हो, उसको उसी कार्यपर नियुक्त करके सबकी ठीक व्यवस्था तो रखते हो न? बड़े-बड़े कार्योंपर भलीभाँति परीक्षा किये हुए, बाप-दादोंके समयके मन्त्रियोंके वंशज, निष्पाप, ऊँचे विचारवाले लोगोंको ही नियुक्त करते हो न? तुम किसीको ऐसा उग्र दण्ड तो नहीं देते, जिससे दुःखी होकर प्रजा या मन्त्री तुम्हारा तिरस्कार करते हों? भाई! जैसे कुलीन स्त्री पर-स्त्रीमें आसक्त पुरुषका तिरस्कार करती है, वैसे ही यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण तुमपर कोई अपराध लगाकर तुम्हें यज्ञके योग्य न समझकर तुम्हारा अपमान तो नहीं करते? धनके लोभसे राजाकी बीमारी बढ़ानेवाले वैद्यको, राजाके ऐश्वर्यको भ्रष्ट करनेके लिये विश्वासी सेवकोंको फोड़नेवाले सेवकको जो राजा प्राण-दण्ड नहीं देता वह स्वयं ही मारा जाता है। भरत! तुम्हारा सेनापति तुमसे सदा प्रेम करनेवाला, शूरवीर, धीर, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन और चतुर तो है न? युद्धकलामें निपुण, बलवान् वीरतामें परीक्षा किये हुए प्रधान योद्धाओंको तुम सदा सम्मान-दानसे प्रसन्न तो रखते हो न? सेनाको अन्न और वेतन प्रतिमास ठीक समयपर मिल जाता है न? इस कार्यमें कुछ भी देर तो नहीं होती? क्योंकि सैनिकोंको अन्न और वेतन समयपर न मिलनेसे वे विद्रोही हो उठते हैं, जिससे बड़ा अनर्थ हो जाता है। तुम्हारे कुलके प्रधान लोग तुमपर प्रेम तो रखते हैं न? वे तुम्हारे हितके लिये समयपर स्वेच्छासे सदा प्राण देनेको तैयार तो रहते हैं न? भाई! अपने ही देशके विद्वान्, चतुर, प्रतिभाशाली, जैसा कहा हो वैसा ही करनेवाले पण्डितोंको ही तुमने दूत बनाया है न?

'भरत! एक-दूसरेको न पहचाननेवाले तीन-तीन गुप्त दूतोंद्वारा तुम अपने राज्यके पन्द्रह और दूसरेके राज्यके अठारह तीर्थोंका पूरा पता तो रखते हो न? १-मन्त्री, २-पुरोहित, ३-युवराज, ४-सेनापति, ५-द्वारपाल, ६-रनिवासका रक्षक, ७-कारागृह-अध्यक्ष (जेल-सुपरिटेंडेंट), ८-खजांची, ९-राज्यकी आज्ञा सुनानेवाला, १०-वकील, ११-न्यायकर्ता (जज), १२-व्यवहार-निर्णायक (पंच या जूरी), १३-सेनाको वेतन चुकानेवाला, १४-कर-संग्रहकर्ता (तहसीलदार), १५-नगराध्यक्ष (म्युनिसिपालिटिका चेयरमैन), १६-राष्ट्रान्तःपाल (सीमारक्षक), १७-दुष्टोंको दण्ड देनेवाला और १८-जल, पर्वत और वनोंके किलोंकी रक्षा करनेवाला—ये अठारह तीर्थ हैं। इनमें मन्त्री, पुरोहित और युवराजको अलग कर देनेपर पन्द्रह बचते हैं। इन सबके कार्योंपर राजाको अवश्य निगरानी रखनी चाहिये। शत्रुदमन! देशका अहित करनेवाले जिन लोगोंको तुमने देशसे निकाल दिया है, वे यदि देशमें फिर आ बसते हैं तो तुम उनको दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते? तुम नास्तिक ब्राह्मणोंका संग तो नहीं करते? परलोक-ज्ञानसे शून्य अनर्थपरायण, पाण्डित्याभिमानी लोगोंसे बहुत बुराई होती है। ऐसे दुर्बुद्धि लोग प्रामाणिक धर्मशास्त्रोंके विद्यमान रहनेपर भी शुष्क तर्क-बुद्धिसे अर्थहीन उपदेश किया करते हैं। भाई! हमलोगोंके वीर पूर्वजोंके द्वारा सेवित यथार्थ अयोध्या (जहाँ युद्धार्थ कोई भी शत्रु नहीं आता) नामवाली और मजबूत दरवाजोंवाली, हाथी, रथ और घोड़ोंसे भरी हुई, अपने-अपने कर्ममें लगे हुए जितेन्द्रिय, उत्साही और उत्तम हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंसे युक्त, अनेक प्रकारके बड़े-बड़े सुन्दर महलोंवाली, अनेक प्रकारके विद्वान् और धन-ऐश्वर्यसे परिपूर्ण विशाल नगरीकी भलीभाँति रक्षा तो करते हो न? भाई! जिसमें अनेक देव-मन्दिर हैं, अश्वमेधादि यज्ञ करनेयोग्य अनेक

स्थल हैं, जो बुद्धिमान् मनुष्योंसे पूर्ण है, नदी, तालाब आदि जलाशयोंसे युक्त है, जिसमें सभी स्त्री-पुरुष सुप्रसन्न हैं, जहाँ अनेक सभाएँ और उत्सव हुआ करते हैं, अच्छी खेती होती है, पर जो बादलोंपर निर्भर नहीं है, जो गौ आदि पशुओंसे भरा है, जहाँ पशुहिंसा बिलकुल नहीं होती, जहाँ हिंस्र पशु नहीं हैं अर्थात् हिंसक पशुओंने हिंसा छोड़ रखी है, किसीको किसी प्रकारका भय नहीं है, अनेक धातुओंकी खानें हैं, जहाँ पापी मनुष्य नहीं रहते, ऐसा अपने पूर्वजोंद्वारा सुरक्षित समृद्धिशाली देश तुम्हारे शासनमें सुखी तो है न? भाई! अपने देशमें रहनेवाले खेती और गोरक्षापर आजीविका चलानेवाले व्यापारियोंपर तुम प्रेम तो करते हो न? खेती और व्यापारमें लगे हुए वैश्योंकी सारी इच्छाओंको पूर्ण करके तुम उनका भलीभाँति संरक्षण तो करते हो न? देशमें बसनेवाली प्रजाका पालन करना राजाका धर्म है। तुम स्त्रियोंका किसी प्रकार अपमान तो नहीं होने देते हो? स्त्रियोंको भलीभाँति संतोष तो कराते हो न? वे तुमसे सुरक्षित तो रहती हैं न? तुम उनके वचनोंपर अतिविश्वास तो नहीं करते? और उन्हींको इष्ट मानकर अपनी गुप्त बात तो नहीं कह देते हो?

'भरत! जहाँ बहुत-से हाथी उत्पन्न होते हैं ऐसा अपना हाथीवन तो सुरक्षित है न? तुम अच्छे हाथी, हथिनी और घोड़ोंके संग्रहमें तृप्त तो नहीं होते? तुम प्रतिदिन प्रात:काल राजमार्गोंपर जाकर प्रजाको अपने सुसज्जित शरीरसे दर्शन तो देते हो न? तुम्हारे कर्मचारी नि:शंक होकर तुम्हारे सामने बेअदबीसे तो नहीं आते? अथवा तुमसे डरकर या तुम्हें अभिमानी समझकर तुम्हारे सामने आनेमें संकोच तो नहीं करते? कर्मचारियोंको न तो बहुत पास रखना चाहिये और न बहुत दूर ही। बीचका मार्ग ही अच्छा है। भाई! तुम्हारे सब किले धन-धान्य, हथियार, जल,

अनेक प्रकारके यन्त्र-शिल्पी और धनुर्धारी वीरोंसे तो भरे हैं न? तुम्हारी आमदनी खर्चसे ज्यादा तो है न? तुम्हारा धन नाचने-गाने और खुशामद करनेवाले अपात्रोंमें तो खर्च नहीं होता? राजाको आमदनीसे खर्च कम करना चाहिये और वह भी प्रजाको अन्न, जल, वायु आदि दैवी वस्तुओंसे यथायोग्य सुख पहुँचानेवाले देवों, प्रजाके सुखाकांक्षी पूज्य पितृगणों, विद्यादान देनेवाले ब्राह्मणों, पूज्य अतिथियों, राज्यरक्षक योद्धाओं, सम्बन्धी और प्रिय मित्रोंके पोषण करनेमें और प्रजाके सुखके कार्योंमें करना चाहिये।

'भाई! तुम्हारे राज्यके न्यायाधीश, किसी सदाचारी साधुपर कोई झूठा अपराध लगनेपर धर्मके ज्ञाता पुरुषोंके द्वारा निर्णय कराये बिना ही धनके लोभसे उसे दण्ड तो नहीं दे देते? अथवा घरके मालिक या तुम्हारे सिपाहीद्वारा पकड़े हुए चोरको, उसके चोर सिद्ध हो जानेपर एवं चोरीका माल पकड़ा जानेपर भी लोभसे छोड़ तो नहीं देते? सारांश कि राजाको यह खयाल रखना चाहिये कि जिसमें उसके राज्यमें निरपराधी प्रजा दण्डित न हो और अपराधी छूट न जाय। भाई! तुम्हारे शास्त्रज्ञ मन्त्रीगण धनी और गरीबके मामलेमें लोभ छोड़कर निष्पक्ष यथार्थ न्याय तो करते हैं न? क्योंकि राजाके अन्यायके कारण बिना अपराध दण्डित हुए मनुष्योंकी आँखोंसे जो आँसू गिरते हैं, वे भोग-विलासके लिये राज्य करनेवाले राजाके पुत्र और पशुधनको नष्ट कर डालते हैं। हे प्रिय! तुम वृद्धों, बालकों और प्रधान वैद्योंका दान, स्नेह और मधुर वचनोंसे सत्कार तो करते हो न? इसी प्रकार देवताओं, गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, अतिथियों, देवमन्दिरों और तपस्या आदिद्वारा पवित्र हुए ब्राह्मण आदिको प्रणाम तो करते हो न?

'भाई! प्रातःकालका समय धर्मोपार्जनका है, उस समय अर्थोपार्जनके कार्यमें लगकर धर्मका बाध तो नहीं करते? ऐसे ही मध्याह्नकाल राज-काज देखनेका यानी अर्थ-संग्रह करनेका है, उस समय धर्मकार्यमें लगकर अर्थका बाध तो नहीं करते? अथवा इन्द्रियभोगार्थ, कामके वश हो धर्म, अर्थ दोनोंको बाधित तो नहीं करते हो? समयका उचित विभाग करके ही धर्म, अर्थ और कामका यथायोग्य आचरण करते हो न? भाई! देशके विद्वान् ब्राह्मण और समस्त प्रजाजन तुम्हारा कल्याण तो चाहते हैं न?

'नास्तिकता, असत्य, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियोंका संग न करना, आलस्य, इन्द्रियोंके वश होना, महत्त्वपूर्ण कार्यका अकेले ही विचार करना, विपरीत दृष्टिवाले अयोग्य पुरुषोंकी सलाह लेना, निश्चित किये हुए कार्यका आरम्भ न करना, गुप्त मन्त्रणाओंका भेद खोल देना, प्रतिदिन प्रातःकाल नित्यकर्म न करना, सब ओरके शत्रुओंपर एक ही साथ चढ़ाई कर देना और महापुरुषोंको आते देख सिंहासनसे उठकर उसे प्रणाम न करना—ये चौदह राजदोष समझे जाते हैं, तुममें इनमेंसे एक भी दोष तो नहीं है न?

'बुद्धिमान् भरत! दशवर्ग[१], पंचवर्ग[२], सप्तवर्ग[३], चतुर्वर्ग[४],

१—शिकार, जूआ, दिनमें सोना, व्यर्थ बकवाद, अति स्त्री-संग, मदिरा आदि नशीली चीजोंका सेवन, नाचना, गाना, बाजे बजाना और बेमतलब भटकना—यह कामसे उत्पन्न होनेवाला 'दशवर्ग' है।

२—पाँच प्रकारके किले बनाना—समुद्र, नदी, तालाब आदि जलस्थानमें, पर्वतपर या पर्वतोंके बीचमें, वृक्षोंपर या वृक्षोंसे भरे जंगलमें, ऊसर जमीनमें (रणक्षेत्रमें) और हथियारोंके बीचमें—यह पंचवर्ग है।

३—राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किले, खजाना, सेना और सहायक बन्धु—यह सप्तवर्ग है। इनकी परस्पर सहायतासे राज्य सुदृढ़ होता है।

४—साम, दान, भेद और दण्ड—यह चतुर्वर्ग है।

अष्टवर्ग[१] और त्रिवर्ग[२]को तो तुम तत्त्वसे जाते हो न? त्रिविध विद्या[३]की ओर तो तुम्हारा ध्यान है न? बुद्धिसे इन्द्रियोंको जीतनेका उपाय[४], षड्गुण[५], दैवी आपत्ति[६], मानुषी आपत्ति[७], राज-कर्तव्य[८], बीसवर्ग[९], पाँच प्रकृति[१०], राजमण्डल[११], पंचयात्रा[१२], दण्डविधान, एवं सन्धि और विग्रह—ये सब नीतिशास्त्रके तत्त्व

१—चिढ़ना, दुःसाहस, द्रोह, ईर्षा, असूया, अर्थदोष, वचनकी कठोरता और कठोर दण्ड—यह अष्टवर्ग है। यह क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका समूह है।

२—धर्म, अर्थ और काम—यह त्रिवर्ग है। उत्साह, प्रभु और मन्त्रको भी त्रिवर्ग कहते हैं।

३—वैदिक धर्मज्ञान, खेती-व्यापार आदि वृत्तिका ज्ञान और राजनीतिका ज्ञान।

४—यम, नियम, आसन, प्राणायाम और विचार-विवेक आदि योग और ज्ञानके साधन।

५—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय।

६—अग्नि, बाढ़, अकाल, भूकम्प, वज्रपात, अनावृष्टि, महामारी आदि।

७—चोर, डाकू, शत्रु, राजद्रोही, अधिकारी, घूसखोर और राज्यलोभी आदि मनुष्योंके द्वारा प्राप्त होनेवाली विपत्तियाँ।

८—शत्रुपक्षके लोभी, अभिमानी, क्रोधी और डरपोक मनुष्योंको धन-मान देकर, प्रियकार्य कर और भय दिखलाकर वशमें करना।

९—बालक, वृद्ध, दीर्घकालका रोगी, जातिबहिष्कृत, डरपोक, डरपोक साथियोंवाला, लोभी, लोभी साथियोंवाला, वैरागी, अत्यन्त विषयासक्त, चंचल, देव और ब्राह्मणोंका निन्दक, अभागा, प्रारब्धवादी, अकालपीड़ित, सेनाहीन, अयोग्य स्थानमें निवास करनेवाला, बहुत शत्रुओंवाला, कालपीड़ित और सत्यधर्ममें प्रीति न रखनेवाला—यह बीसवर्ग है। ऐसे शत्रुओंसे सन्धि करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि इनपर विजय प्राप्त करना सहज है।

१०—मन्त्री, देश, किला, खजाना और दण्ड—यह पाँच प्रकृति है।

११—विजिगीषु, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार, मध्यस्थ और उदासीन—ये द्वादश राजमण्डल हैं।

१२—विगृह्ययान (बड़ी सेना साथ लेकर जाना), संधाययान (जिस शत्रुपर आक्रमण किया था, उससे सन्धि करनेके बाद दूसरे शत्रुपर हमला करने जाना), संभूययान (शूरवीरोंको साथ लेकर जाना), प्रसंगतोयान (जिसपर हमला करने जा रहे थे, उसको छोड़कर बीचमें ही दूसरे शत्रुपर हमला करना) और उपेक्ष्ययान (जिसपर चढ़ाई की थी, उसे बलवान् समझकर उसके मित्रपर चढ़ाई करना)।

हैं। इनमें कुछ ग्रहण करनेयोग्य, कुछ त्याग करनेयोग्य और कुछ प्रतीकार करनेयोग्य हैं। तुम इन सबके भेदोंको समझते हुए यथायोग्य ग्रहण, त्याग और प्रतीकार तो करते हो न?

'हे बुद्धिमान्! तुम शास्त्रानुसार तीन-चार निपुण मन्त्रियोंसे एक साथ या उनके मनकी बात जाननेके लिये अलग-अलग राय लेकर तो सारे कार्य करते हो न? वेदोक्त क्रियाओंको करके तुम वेदको सफल तो करते हो न? तुम्हारे सारे राज्यकार्य सफल तो होते हैं न? उत्तम आचरण करके तुम श्रवण किये शास्त्रोंको तो सफल कर रहे हो न? धर्मपरायणा और संतानवती होकर स्त्रियाँ तो सफल हैं न? भाई भरत! मेरे कथनानुसार ही तुमने आयु, यश, धर्म, अर्थ और कामको प्रदान करनेवाली सद्बुद्धिका आश्रय ले रखा है न? तुम अपने पिता-पितामहादिके व्यवहारके अनुकूल ही व्यवहार करते हो न? क्योंकि वही शुभ और सत्पथा वृत्ति है। तुम स्वादिष्ट भोजन अकेले तो नहीं खाते? अधिक प्रेम होनेके कारण भोजन चाहनेवाले मित्रोंको यथेच्छ भोजन तो देते हो न? इस प्रकार धर्मानुसार शासन करनेवाला राजा अपनी प्रजाका पालन करके समस्त पृथ्वीपर अपना आधिपत्य स्थापित करता है और मृत्युके अनन्तर स्वर्ग या परमधामको जाता है।' यह वर्णन वाल्मीकिरामायणके आधारपर लिखा गया है।

भगवान् श्रीरामका श्रीलक्ष्मणको उपदेश

अपने पिता महाराज श्रीदशरथजीकी आज्ञा पाकर मर्यादापुरुषोत्तम परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजी तथा श्रीलक्ष्मणजीके साथ अयोध्यासे वनवासके लिये निकल पड़े। वे नाना प्रकारके तीर्थों, पर्वतों और ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंको देखते हुए श्रीअगस्त्यजीके आश्रममें पहुँचे और उन्होंने ऋषिवरसे प्रश्न किया कि मुझे ऐसा स्थान बतलाइये जहाँ रहकर मैं अपने जीवनका कार्य सुचारुरूपसे पूरा कर सकूँ। परमज्ञानस्वरूप लीलातनुधारी भगवान्के प्रश्नको सुनकर ऋषिवरको बड़ा संकोच हुआ। भगवान्ने उन्हें जो यह मान दिया, उससे वे प्रेममग्न हो गये। उन्होंने श्रीसीताजी और अनुज लक्ष्मणके साथ अपने हृदयमें निवास करनेकी प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि पंचवटी नामक एक परम पवित्र और रमणीक स्थान है, जहाँपर गोदावरी नदी बहती है, वहींपर दण्डकवनमें आप निवास करें और सब मुनियोंपर दया करें।

दण्डकवन पहले एक प्रसिद्ध तपोवन था। वहाँ अनेक ऋषि-मुनि रहकर तपस्या किया करते थे, परंतु इधर ऋषिशापसे वह राक्षसोंका निवासस्थान बनकर अत्यन्त भयावह हो रहा था, आनन्दके स्थानमें वहाँ आतंकका राज्य छाया हुआ था। वहाँके लता-वृक्षतक राक्षसोंके कुकृत्य तथा ऋषि, मुनि और ब्राह्मणोंकी दुर्दशा देखकर निरन्तर आँसू बहाया करते थे। ऋषिकी आज्ञा पाकर भगवान् तुरंत दण्डकवनमें पधारे। उनके पधारते ही मानो वहाँसे भय, शोक, दुःख एकदम विलीन हो गये और सर्वत्र आनन्दका राज्य छा गया। ऋषि-मुनि निर्भय हो गये; लता, वृक्ष, नदी, ताल आदितक श्रीराम, श्रीसीता और श्रीलक्ष्मणके चरणकमलोंके दर्शनकर अत्यन्त आनन्दित और शोभायमान हो गये। भगवान्ने

गोदावरी-तटपर एक पर्णकुटी बनायी और वे उसमें श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीके साथ सुखपूर्वक निवास करने लगे।

एक दिन भगवान् सुखपूर्वक आसनपर विराजमान थे; समीप ही श्रीजानकीजी तथा श्रीलक्ष्मणजी भी यथास्थान आसनपर बैठे हुए थे। एक सुन्दर अवसर जानकर श्रीलक्ष्मणजीने निष्कपट अन्तःकरणसे दोनों हाथ जोड़कर बड़ी नम्रताके साथ भगवान्‌से निवेदन किया—

सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥

ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥

सारांश यह कि 'हे सुर, नर, मुनि तथा समस्त जगत्‌के स्वामी! मैं आपको अपना प्रभु समझकर पूछ रहा हूँ। कृपाकर मुझे समझाकर कहिये कि ज्ञान, वैराग्य और माया किसे कहते हैं? वह कौन-सी भक्ति है, जिससे आप भक्तोंपर दया करते हैं और ईश्वर तथा जीवमें क्या भेद है, जिससे मेरा शोक, मोह, भ्रम इत्यादि दूर हो जाय और मैं सब कुछ छोड़कर आपकी चरण-रजकी सेवामें ही तल्लीन हो जाऊँ।'

भक्तवत्सल भगवान्‌ने सरलहृदय, परम श्रद्धालु, एकान्त प्रेमीके कल्याणके लिये संक्षेपमें इस प्रकार उत्तर दिया—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥
धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥
भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥
बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

सारांश यह कि 'भाई! मैं और मेरा, तू और तेरा ही माया है, जिसने समस्त जीवोंको अपने वशमें कर रखा है। इन्द्रियाँ और उनके विषयोंमें जहाँतक मन जाता है,वहाँतक माया ही जानना चाहिये। इस मायाके दो भेद हैं—विद्या और अविद्या। इनमें एक अविद्या तो दुष्ट और अत्यन्त दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव भवकूपमें पड़ा हुआ है। दूसरी अर्थात् विद्या, जिसके वशमें समस्त गुण हैं, संसारकी रचना करती है; वह प्रभुकी प्रेरणासे सब कार्य करती है, उसका अपना कोई बल नहीं है।

'तात! जिस मनुष्यमें ज्ञानाभिमान बिलकुल नहीं है, जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मको व्याप्त देखता है, जिसने तृणके समान सिद्धियों

और तीनों गुणोंको त्याग दिया है, उसीको परम वैराग्यवान् कहना चाहिये।

'जो अपनेको मायाका स्वामी नहीं जानता, वही जीव है और जो बन्धन और मोक्षका दाता है, सबसे श्रेष्ठ है, मायाका प्रेरक है, वही ईश्वर है!

'वेद कहते हैं कि धर्मसे वैराग्य, वैराग्यसे योग, योगसे ज्ञान होता है और ज्ञान ही मोक्षको देनेवाला है; परंतु मैं जिससे शीघ्र प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है और वही भक्तोंको सुख देनेवाली है। वह भक्ति स्वतन्त्र है; वह किसी चीजपर अवलम्बित नहीं है; ज्ञान और विज्ञान सब उसके अधीन हैं। तात! भक्ति अनुपम सुखका मूल है और वह तभी प्राप्त होती है जब संतलोग अनुकूल होते हैं।

'अब मैं भक्तिके साधनका वर्णन करता हूँ और वह सुगम मार्ग बतलाता हूँ जिससे प्राणी मुझे सहजमें ही पा सकें। पहले तो ब्राह्मणके चरणोंमें बहुत प्रीति होनी चाहिये और वेदविहित अपने-अपने धर्ममें प्रवृत्ति होनी चाहिये। इसका फल यह होगा कि मन विषयोंसे विरक्त हो जायगा और तब मेरे चरणोंमें अनुराग उत्पन्न हो जायगा। फिर श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—यह नौ प्रकारकी भक्ति दृढ़ होनी चाहिये और मनमें मेरी लीलाओंके प्रति अत्यन्त प्रेम होना चाहिये। जिसे संतोंके चरण-कमलोंमें अत्यधिक प्रेम हो, जो मन-वचन-कर्मसे भजन करनेका दृढ़ नियम रखनेवाला हो, जो मुझे ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जानता हो और मेरी सेवा करनेमें डटा रहता हो, मेरा गुण गाते समय जिसके शरीरमें रोमांच हो आता हो, वाणी गद्गद हो जाती हो और नेत्रोंसे आँसू गिरते हों और जिसके अंदर काम, मद, दम्भ आदि न हों, मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ। मन, वचन और कर्मसे जिनको मेरी ही गति है, जो निष्कामभावसे मेरा भजन करते हैं, मैं सदा उनके हृदय-कमलमें विश्राम करता हूँ।'

दशरथके समयकी अयोध्या

यह महानगरी बारह योजन लम्बी थी। इसमें सुन्दर लम्बी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं। नगरीकी प्रधान सड़कें तो बहुत ही लम्बी-चौड़ी थीं, जिनपर प्रतिदिन जलका छिड़काव होता था, सुगन्धित फूल बिखेरे जाते थे, दोनों ओर सुन्दर वृक्ष लगे हुए थे। नगरीके अंदर अनेक बाजार थे, सब प्रकारके यन्त्र, मशीनें और युद्धके सामान तैयार मिलते थे। बड़े-बड़े कारीगर वहाँ रहते थे। अटारियोंपर ध्वजाएँ फहराया करती थीं। नगरकी चारदीवारीपर सैकड़ों शतघ्नी (तोपें) लगी हुई थीं, बड़े मजबूत किवाड़ लगे हुए थे, नगरके चारों ओर गहरी खाई थी। अनेक सामन्त, राजा और शूरवीर वहाँ रहा करते थे। व्यापारी भी अनेक रहते थे। नगरी इन्द्रकी पुरीके समान बड़े सुन्दर ढंगसे बसी हुई थी, उसके आठ कोने थे। वहाँ सब प्रकारके रत्न थे और सातमंजिले बड़े-बड़े मकान थे। राजाके महलोंमें रत्न जड़े हुए थे। बड़ी सघन बस्ती थी। नगरी समतल भूमिपर बसी हुई थी। खूब धान होता था और अनेक प्रकारके पदार्थ होते थे। वेद-वेदांगके ज्ञाता, अग्निहोत्री और गुणी पुरुषोंसे नगरी भरी हुई थी। महर्षियोंके समान अनेक महात्मा भी वहाँ रहते थे।

उस समय उस रम्य नगरी अयोध्यामें निरन्तर आनन्दमें रहनेवाले, अनेक शास्त्रोंको श्रवण करनेवाले धर्मात्मा, सत्यवादी, लोभरहित और अपने ही धनमें संतुष्ट रहनेवाले मनुष्य रहते थे। ऐसा एक भी गृहस्थ नहीं था जिसका धन आवश्यकतासे कम हो, जिसके पास इहलोक और परलोकके सुखोंके साधन न हों। सभी गृहस्थोंके घर गौ, घोड़े और धन-धान्यसे पूर्ण थे। कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक तो ढूँढ़े भी नहीं मिलते थे।

वहाँके सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा, इन्द्रियनिग्रही, हर्षयुक्त, सुशील और महर्षियोंके समान पवित्र थे। सभी स्नान करते, कुण्डल-मुकुट-माला धारण करते, सुगन्धित वस्तुओंका लेपन करते, उत्तम भोजन करते और दान देते थे। परंतु वे सभी आत्मवान् थे, सभी अग्निहोत्र और सोमयाग करनेवाले थे। क्षुद्र विचारका, चरित्रहीन, चोर और वर्णसंकर कोई नहीं था। वहाँके जितेन्द्रिय ब्राह्मण निरन्तर अपने नित्य कर्मोंमें लगे रहते थे। दान देते थे, विद्याध्ययन करते थे, परंतु निषिद्ध दान कोई नहीं लेता था। अयोध्यामें कोई भी नास्तिक, झूठा, ईर्ष्या करनेवाला, अशक्त और मूढ़ नहीं था। सभी बहुश्रुत थे। ऐसा कोई न था जो वेदके छः अंगोंको न जानता हो, व्रत-उपवासादि न करता हो, दीन हो, पागल हो या दुःखी हो। अयोध्यामें सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा राजाके भक्त थे। चारों वर्णोंके स्त्री-पुरुष देवता और अतिथिकी पूजा करनेवाले, दुःखियोंको आवश्यकतानुसार देनेवाले, कृतज्ञ और शूरवीर थे। वे धर्म और सत्यका पालन करते थे। दीर्घजीवी थे और स्त्री-पुत्र-पौत्रादिसे युक्त थे। वहाँके क्षत्रिय ब्राह्मणोंके अनुयायी, वैश्य क्षत्रियोंके अनुयायी और शूद्र तीन वर्णोंके सेवारूप सुकर्ममें लगे रहते थे। नगरी राजाके द्वारा पूर्णरूपसे सुरक्षित थी। विद्या-बुद्धि-निपुण, अग्निके समान तेजस्वी और शत्रुके अपमानको न सहनेवाले योद्धाओंसे अयोध्या उसी प्रकार भरी हुई थी जैसे गुफाएँ सिंहोंसे भरी रहती हैं। अनेक प्रकारके घोड़े और बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे नगरी पूर्ण थी। उसका अयोध्या नाम इसीलिये पड़ गया था कि वहाँ कोई भी शत्रु युद्धके लिये नहीं आ सकता था।

अब आजके भारतसे इसका मिलान कीजिये!

रामायणकी प्राचीनता

आजकल कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि रामायणकी रचना महाभारतके बादकी है। यद्यपि निरपेक्षतापूर्वक ग्रन्थोंका अध्ययन करनेपर इस मान्यतामें हठके अतिरिक्त अन्य कोई भी आधार नहीं ठहरता। जिस प्रकार भगवान् रामका काल कौरव-कालसे लाखों वर्ष पहलेका है, उसी प्रकार रामायणकी रचना भी है। रामायणमें जिस मर्यादापूर्ण सत्त्वमयी सभ्यताका वर्णन है, महाभारतमें वैसा नहीं है, इसीसे पता लगता है कि रामायण-कालसे महाभारत-कालकी सभ्यताका आदर्श बहुत नीचा था। गुरुकुल-काँगड़ीके प्रसिद्ध अध्ययनशील श्रीयुत रामदेवजीने लिखा है—'धर्ममय एवं आत्मिक तथा प्राकृतिक सब प्रकारकी उन्नतियोंसे परिपूर्ण रामायणके संक्षिप्त इतिहासको छोड़कर शोकमय हृदयके साथ महाभारतके समयका यत्किंचित् इतिहास लिखना पड़ता है। श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र आचरणके प्रतिकूल युधिष्ठिरके जूआ खेलने आदि कर्मोंका, लक्ष्मण-भरतादिके भ्रातृ-स्नेहके प्रतिकूल युधिष्ठिरके प्रति भीमसेनके अपमानसूचक शब्दोंका, महाराज दशरथकी प्रजाके सम्मुख सीताको कैकेयीद्वारा तपस्विनीके वस्त्र देनेपर प्रजाका एक साथ चिल्ला उठना '**धिक् त्वां दशरथम्**' तथा धृतराष्ट्रकी राजसभामें द्रौपदीकी दुर्दशा होनेपर भी भीष्म, द्रोणादि वीरोंका कुछ भी न कर सकना, कुटिला दासी मन्थराका भी अपमान भरतके लिये असह्य और महारानी द्रौपदीकी दुर्दशामें दुर्योधन-कर्णादिकी प्रसन्नता, सती-साध्वी सीताका पातिव्रत और श्रीरामचन्द्रजीका पत्नीव्रत, उसके प्रतिकूल सत्यवतीके और कुन्तीके कानीन पुत्रोंकी उत्पत्ति और पाण्डवादिके बहुविवाह, श्रीरामचन्द्रजीके वनकी ओर चलनेपर

अयोध्यावासियोंका उनके साथ वनगमनके लिये प्रयत्न और युधिष्ठिरके दो बार हस्तिनापुरसे निकाले जानेपर सिवा थोड़े-से नगर-निवासियोंके पाण्डवोंके दुःखके साथ खुल्लमखुल्ला दुःख प्रकट करनेमें अन्योंका कौरवोंके भयसे मौनावलम्बन, श्रीराम और भरतका महान् राज्य-जैसे पदार्थको धर्मपालनके सम्मुख तुच्छ समझना और उसे एकका दूसरेके हाथमें फेंकना और दुर्योधनका यह कहना कि '**सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव**' युद्धक्षेत्रमें रावणके घायल हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीका यह कहना कि घायलका वध करना धर्मविरुद्ध है और शस्त्र छोड़े हुए भीष्म और द्रोणका वध, रथसे उतरे हुए कर्णका वध, सोते हुए धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंका ब्राह्मणकुलोत्पन्न वीरताभिमानी अश्वत्थामाद्वारा वध, कहाँतक गिनायें। ये सब घटनाएँ हैं—जो स्पष्टरूपसे रामायण और महाभारतके समयकी अवस्थाओंको प्रकट करती हैं। यद्यपि महाभारतके समय रामायणके समयकी भाँति ही अथवा उससे भी अधिक आर्यावर्तमें सम्पत्ति भरी हुई थी और रामायणके समयके वीरोंकी भाँति भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि कतिपय योद्धा वायव्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, वारुणास्त्र, अन्तर्धानास्त्र, ब्रह्मास्त्रादि आग्नेयास्त्रोंकी विद्या भी जानते थे। अश्वतरी नाम अग्नियान जलपर चलता था, आर्यावर्तका दबदबा सारी पृथ्वीपर जमा हुआ था; परंतु रामायणके रामकी अपेक्षा इस समय धर्मका बहुत ह्रास था·····।'

इस अवतरणसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामका और रामायणका काल बहुत ही प्राचीन, शिक्षाप्रद तथा गौरवमय है।

श्रीरामायण-माहात्म्य

सनत्कुमारके प्रति देवर्षि नारदके वचन—

रामायणमहाकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम्।
रामचन्द्रगुणोपेतं सर्वकल्याणसिद्धिदम्॥

आदिकवि-कृत रामायण महाकाव्य सर्ववेदार्थ-सम्मत और सब पापोंका नाश करनेवाला तथा दुष्ट ग्रहोंका निवारण करनेवाला है। यह दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला, मुक्ति-भुक्ति प्रदान करनेवाला रामायण धन्य है।

आदिकाव्य रामायण स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

जिसके पूर्वजन्मके पाप निश्चयपूर्वक नष्ट हो जाते हैं, उस मनुष्यको अवश्य ही रामायणमें अटल महाप्रीति उत्पन्न होती है।

मानव-शरीरमें पाप तभीतक रह सकते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्रामायणकी कथा सम्यक् प्रकारसे नहीं सुनता।

रामायण सब दुःखोंका नाश करनेवाला, सब पुण्योंका फल प्रदान करनेवाला और सब यज्ञोंका फल देनेवाला है।

जो द्विज रामनाम-रत होकर रामायणमें लवलीन रहते हैं, इस घोर कलियुगमें वे ही कृतकृत्य हैं।

जो मनुष्य नित्य रामायणमें लवलीन रहते हैं, गंगास्नान करते हैं और धर्म-मार्गका उपदेश करते हैं, वे मुक्त ही हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

जो जितेन्द्रिय और शान्तचित्त हो रामायणका नित्य पाठ करता है, वह उस परम आनन्दधामको प्राप्त होता है जहाँ जानेपर उसे कभी शोक नहीं सताता।

क्षमाके समान कोई सार पदार्थ नहीं, कीर्तिके समान कोई धन नहीं, ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं और श्रीरामायणसे बढ़कर कुछ भी नहीं है।

जगत्का हित करनेवाले जो सज्जन रामायणमें लगे रहते हैं, वे ही सर्वशास्त्रार्थमें पण्डित हैं और धन्य हैं।

जिस घरमें नित्य रामायणकी कथा होती है, वह घर तीर्थरूप है और दुष्टोंके पापका नाश करनेवाला है।

रामनामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
संसारविषयान्धानां नराणां पापकर्मणाम्॥
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

रामनाम ही मेरा जीवन है, नाम ही मेरा जीवन है। इस कलियुगमें संसारके विषयोंमें अंधे हुए पापकर्मी मनुष्योंके लिये दूसरी गति नहीं है, नहीं है (स्कन्दपुराण)। भगवान् शिवजी कहते हैं—

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥
राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥

श्रीरामचरितमानस सच्चा इतिहास है

कहा तो जाता है कि वर्तमान युग बुद्धिप्रधान और उन्नतिसम्पन्न है, परंतु गम्भीरताके साथ विचार करनेपर पता लगता है कि बुद्धिकी जगह अश्रद्धा और अविश्वासने ले ली है और उन्नतिका स्थान कलह और द्वेषने! जहाँ अश्रद्धा और अविश्वासका विस्तार है, वहाँ हम यह कहते हैं कि यहाँ बुद्धिसे काम लिया जाता है, अविवेक या अन्धपरम्परासे नहीं; और जहाँ द्वेष और कलह है, वहाँ हम समाजमें जागृति और उन्नतिका आरोप करते हैं। इसी कारण आज हमारी वास्तविकता नष्ट हो रही है और क्रमशः हमारा जीवन कृत्रिम होता चला जा रहा है। श्रद्धा-विश्वासका तिरस्कार करके हम अपने घरमें रखे हुए पारससे लाभ नहीं उठा रहे हैं, यही विधिकी विडम्बना है। इसी कारण आज अपनी सनातन सभ्यता और इतिहासपरसे हमारी आस्था उठती चली जा रही है। अच्छे-अच्छे विद्वान् और समझदार पुरुष भी आज प्रत्येक सत्यको—यहाँतक कि ईश्वरतकको कवि-कल्पनाका स्वरूप देनेमें ही अपनी शान समझने लगे हैं। यह मानव-जातिका दुर्भाग्य है!

रामायण और महाभारतको सनातनसे हिंदूजाति अपना गौरवपूर्ण इतिहास मानती चली आ रही है, परंतु आधुनिक विद्वान् उन्हें इतिहास स्वीकार करनेमें हिचकते हैं। अवश्य ही इसमें उनकी नीयत बुरी नहीं है, परंतु कालप्रभाव और अविश्वासपूर्ण वायुमण्डलका उनकी बुद्धिपर इतना गहरा असर हुआ है कि उनका लक्ष्य और उनकी विचारधाराकी गति ही पलट गयी है। इसीसे प्रत्येक बातको वे अपनी काल्पनिक कसौटीपर कसकर क्षणोंमें ही काल्पनिक करार दे डालते हैं।

रामायणके सम्बन्धमें कुछ विद्वान् स्पष्टरूपसे ऐसा कहते हैं कि 'यह इतिहास नहीं है, काव्य-मात्र है। इसमें जिन पात्रोंका वर्णन है; वे या तो हुए ही नहीं, यदि हुए हैं तो इस काव्यमें उनका सर्वथा अतिरंजित रूप है। उनको केवल आधार बनाकर काव्य लिखा गया है, इतिहासके रूपमें उनके जीवनकी सत्य घटनाओंका संकलन इसमें नहीं है।' इस प्रकारके विचार रखनेवाले सज्जनोंसे यही प्रार्थना है कि वे इस विषयपर पुनः विचार करें। यदि गम्भीरताके साथ विचार करेंगे और भ्रान्त विचारधाराको शुद्ध कर सकेंगे तो उन्हें अवश्य ही अपनी भूल प्रतीत होगी।

दूसरी श्रेणीमें कुछ सज्जन ऐसे हैं, जो वाल्मीकीय रामायणको तो इतिहास स्वीकार करते हैं, परंतु गोसाईं तुलसीदासजी महाराजके रामचरितमानसको इतिहास नहीं मानते। वे उसे केवल भक्तिपूर्ण सुन्दर काव्य ही मानते हैं, परंतु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। जिस प्रकार वाल्मीकीय रामायण सच्चा इतिहास है, उसी प्रकार तुलसीकृत रामचरितमानस भी है। इसपर कहा जा सकता है कि यदि ऐसी ही बात है तो जगह-जगह दोनोंके वर्णनोंमें इतना भेद क्यों है। इसका उत्तर गोस्वामी तुलसीदासजीने स्वयं ही दे दिया है—

जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरजु करै सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं । असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए । भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सादर रति मानी॥

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥

'मैं जो यह नयी कथा कहता हूँ, इसको पहले (किसी भी रामायणमें) न सुना हो तो इसे सुनकर आश्चर्य न करें। जो ज्ञानी पुरुष इस विचित्र (पहले कहीं न सुनी हुई) कथाको सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि संसारमें रामकथाकी कोई सीमा नहीं है। उनके मनमें ऐसा विश्वास रहता है। नाना प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीके अवतार हुए और करोड़ों अपार रामायण हैं। कल्पभेदके अनुसार श्रीहरिके सुन्दर चरित्रोंको मुनीश्वरोंने अनेकों प्रकारसे गाया है। हृदयमें ऐसा विचारकर सन्देह न कीजिये और आदरसहित प्रेमसे इस कथाको सुनिये। श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओंका विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके निर्मल विचार हैं, वे इस कथाको सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे।'

यह जान रखना चाहिये कि महामुनि वाल्मीकिने जिन रामकी कथाका वर्णन किया है, वे भगवान् विष्णुके अवतार हैं और गोसाईंजीके राम समग्र ब्रह्मरूप परात्पर भगवान् हैं। उन दोनों अवतारोंकी लीलाओंमें अन्तर है और उसीके अनुसार दोनों सत्यवादी महर्षि कवियोंने उनका यथार्थ वर्णन किया है। वाल्मीकि और तुलसीदासजी कवि पीछे हैं, भगवद्भक्त महर्षि पहले। इसलिये वे मिथ्या कल्पनाको इतिहासका स्वरूप दें, ऐसा मानना भूल है। तुलसीदासजीने स्वयं अपने रामचरितमानसको 'इतिहास' कहा है—

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा॥

शिवजी कहते हैं—मैंने यह परम पुनीत इतिहास कहा है, इसके सुननेसे भवबन्धन छूट जाता है और प्रणतकल्पतरु करुणामय श्रीरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न होता है।

आधुनिक इतिहासोंसे हमारे इन इतिहासोंकी यही विशेषता है। आधुनिक इतिहासोंके पढ़नेसे केवल घटनाओंका और तारीख-सनोंका ही पता लगता है और प्रायः वे इतिहास किसी-न-किसी सम्पर्कयुक्त व्यक्तिके लिखे होनेसे सर्वथा सत्य भी नहीं होते, परंतु हमारे रामायण-महाभारतादि इतिहास ब्रह्मज्ञानी, भगवद्भक्त, स्वाभाविक ही सदाचार-परायण, सत्यवादी ऋषियोंके लिखे होनेके साथ ही वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंके उपदेशोंसे समन्वित होनेके कारण पढ़नेवालोंको भवपाशसे मुक्तकर उन्हें भगवान्‌का परम प्रेम प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। काव्यकलाका विशेष आनन्द तो घलुएमें मिल जाता है। इसीसे हमारे इतिहासका लक्षण है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

'जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके उपदेशोंसे समन्वित और प्राचीन (सत्य) घटनाओंसे युक्त हो उसे इतिहास कहते हैं।'

श्रीरामचरितमानस भी ऐसा सत्य घटनाओंसे पूर्ण इतिहास है। इसमें महाकाव्यका रस भरा है, यह इसकी विशेषता है और तमाम दुःखोंका नाश करके परमानन्द और परम शान्तिकी प्राप्तिके साथ ही परात्पर श्रीभगवान्‌के ज्ञान, दर्शन और प्रेमको अनायास ही प्राप्त करा देना इसका सुन्दर फल है।

रामायण हमें क्या सिखाती है?

१—शुद्ध सच्चिदानन्दघन एक परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है और अखिल विश्व एवं विश्वकी घटनाएँ उसीका स्वरूप और लीला हैं।

२—परमात्मा समय-समयपर अवतार धारणकर प्रेमद्वारा साधुओंका और दण्डद्वारा दुष्टोंका उद्धार करनेके लिये लोककल्याणार्थ आदर्श लीला करते हैं।

३—भगवान्‌की शरणागति ही उद्धारका सर्वोत्तम उपाय है। उदाहरण—विभीषण।

४—सत्य ही परम धर्म है, सत्यके लिये धन, प्राण, ऐश्वर्य, सभीका सुखपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम।

५—मनुष्य-जीवनका परम ध्येय परमात्माकी प्राप्ति करना है और वह भगवत्-शरणागतिपूर्वक संसारके समस्त कर्म ईश्वरार्थ त्यागवृत्तिसे फलासक्तिशून्य होकर करनेसे सफल हो सकता है।

६—वर्णाश्रम-धर्मका पालन करना परम कर्तव्य है।

७—माता-पिताकी सेवा पुत्रका प्रधान धर्म है। उदाहरण—श्रीराम, श्रीश्रवणकुमार।

८—स्त्रियोंके लिये पातिव्रत्य परम धर्म है। उदाहरण—श्रीसीताजी।

९—पुरुषके लिये एकपत्नी-व्रतका पालन अति आवश्यक है। उदाहरण—श्रीराम।

१०—भाइयोंके लिये सर्वस्व त्यागकर उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना परम कर्तव्य है। उदाहरण—श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न।

११—धर्मात्मा राजाके लिये प्राण देकर भी उसकी सेवा करना प्रजाका प्रधान कर्तव्य है। उदाहरण—(१) वनगमनके समय अयोध्याकी प्रजा, (२) लंकाके युद्धमें वानरी प्रजाका आत्मबलिदान।

१२—अन्यायी, अधर्मी राजाके अन्यायका कभी समर्थन न करना चाहिये। सगे भाई होनेपर भी उसके विरुद्ध खड़े होना धर्म है। उदाहरण—विभीषण।

१३—प्रजारंजनके लिये प्राण-प्रिय वस्तुका भी विसर्जन कर देना राजाका प्रधान धर्म है। उदाहरण—श्रीरामजीद्वारा सीता-त्याग।

१४—प्रजाहितके लिये यज्ञादि कर्मोंमें सर्वस्व दान दे डालना। उदाहरण—दशरथ और श्रीराम।

१५—धर्मपर अत्याचार और स्त्रीजातिपर जुल्म करनेसे बड़े-से-बड़े शक्तिशाली सम्राट्का विनाश हो जाता है। उदाहरण—रावण।

१६—मित्रके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहना तथा उसके सभी कार्य करना। उदाहरण—श्रीराम-सुग्रीव और श्रीराम-विभीषण।

१७—निष्काम सेवा-भावसे सदा-सर्वदा भगवान्के दासत्वमें लगे रहना। उदाहरण—श्रीहनुमान्जी।

१८—सौतके पुत्रोंपर भी प्रेम करना। उदाहरण—कौसल्या, सुमित्रा।

१९—प्रतिज्ञा-पालनके लिये सगे भाईतकका उसके प्रति हृदयमें पूर्ण प्रेम रखते हुए भी त्याग कर देना। उदाहरण—श्रीरामके द्वारा लक्ष्मण-त्याग ।

२०—ब्राह्मण-साधुओंका सदा दान-मानसे सत्कार करना। उदाहरण—श्रीराम।

२१—अवकाशके समय भगवच्चर्चा या सच्चिन्तन करना। उदाहरण—श्रीराम आदि भाइयोंकी बातचीत।

२२—गुरु, माता, पिता, बड़े भाई आदिके चरणोंमें नित्य प्रणाम करना।

२३—पितरोंका श्रद्धापूर्वक तर्पण-श्राद्ध करना।

२४—अन्यायका सर्वदा और सर्वथा प्रतिवाद करना। उदाहरण—लक्ष्मण।

२५—धर्मपालनके लिये बड़े-से-बड़ा कष्ट सहन करना। उदाहरण—श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, भरत।

२६—द्विजमात्रको नित्य ठीक समयपर सन्ध्या करनी चाहिये।

२७—सदा निर्भय रहना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम-लक्ष्मण।

२८—बहुविवाह कभी नहीं करना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम।

२९—साधु-संत महात्माओंके धर्मकार्यकी रक्षाके लिये सदा तैयार रहना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम-लक्ष्मण।

३०—अपना बुरा करनेवालेके प्रति भी अच्छा ही बर्ताव करना। उदाहरण—श्रीरामका बर्ताव कैकेयीके प्रति, श्रीवसिष्ठका बर्ताव विश्वामित्रके प्रति।

३१—स्त्रीके लिये पर-पुरुषका किसी भी अवस्थामें जान-बूझकर स्पर्श नहीं करना। उदाहरण—लंकामें श्रीसीताने हनुमान्‌की पीठपर चढ़कर जाना भी अस्वीकार कर दिया।

३२—पुरुषोंको पर-स्त्रीके अंग नहीं देखने चाहिये। उदाहरण—लक्ष्मणजीने बरसों साथ रहनेपर भी सीताके अंग नहीं देखे, इससे वे उनके गहनेतक नहीं पहचान सके।

३३—साधारण-से-साधारण जीवके साथ भी प्रेम करना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम।

३४—भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेकर प्रेमसे उनकी चरणरज मस्तकपर धारण करनेसे जड भी चैतन्य हो सकता है। उदाहरण—अहल्या।

३५—बड़ोंके बीचमें अनधिकार नहीं बोलना। उदाहरण—शत्रुघ्न।

३६—नास्तिकवाद किसीका भी नहीं मानना। उदाहरण—श्रीरामने जाबालि-सरीखे ऋषि और पिताके मन्त्रीकी बात नहीं मानी। नहीं मानी।

श्रीरामनवमी

श्रीरामनवमी सारे जगत्‌के लिये सौभाग्यका दिन है; क्योंकि अखिल विश्वपति सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान् इसी दिन दुर्दान्त रावणके अत्याचारसे पीडित पृथ्वीको सुखी करने और सनातन-धर्मकी मर्यादा स्थापन करनेके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए थे। श्रीराम केवल हिंदुओंके ही 'राम' नहीं हैं, वे अखिल विश्वके प्राणाराम हैं। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णको केवल हिंदूजातिकी सम्पत्ति मानना उनके गुणोंको घटाना है, असीमको सीमाबद्ध करना है। विश्वचराचरमें आत्मरूपसे नित्य रमण करनेवाले और स्वयं ही विश्वचराचरके रूपमें प्रतिभासित सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वरूप नारायण किसी एक देश या व्यक्तिकी ही वस्तु कैसे हो सकते हैं? वे सबके हैं, सबमें हैं, सबके साथ सदा संयुक्त हैं और सर्वमय हैं। जो कोई भी जीव उनकी आदर्श मर्यादा-लीला—उनके पुण्यचरित्रका श्रद्धापूर्वक गान, श्रवण और अनुकरण करता है, वही पवित्र-हृदय होकर परम सुखको प्राप्त कर सकता है। श्रीरामके समान आदर्श पुरुष, आदर्श धर्मात्मा, आदर्श नरपति, आदर्श मित्र, आदर्श शत्रु, आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श पति, आदर्श स्वामी, आदर्श सेवक, आदर्श वीर, आदर्श दयालु, आदर्श शरणागत-वत्सल, आदर्श तपस्वी, आदर्श सत्यवादी, आदर्श दृढ़प्रतिज्ञ और आदर्श संयमी और कौन हुआ? जगत्‌के इतिहासमें श्रीरामकी तुलनामें एक श्रीराम ही हैं। श्रीरामने साक्षात् परमपुरुष परमात्मा होनेपर भी जीवोंको सत्यपथपर आरूढ़ करानेके लिये ऐसी आदर्श लीलाएँ कीं, जिनका अनुकरण सभी लोग सुखपूर्वक कर सकते हैं।

उन्हीं हमारे श्रीरामका पुण्य प्राकट्यदिवस चैत्र शुक्ला नवमी है। इस सुअवसरपर सभी लोगोंको, खास करके उनको, जो श्रीरामको साक्षात् भगवान् और अपने आदर्श पूर्वपुरुषके रूपमें अवतरित मानते हैं, श्रीराम-जन्मका पुण्योत्सव मनाना चाहिये। इस उत्सवका प्रधान उद्देश्य होना चाहिये श्रीरामको प्रसन्न करना और श्रीरामके आदर्श गुणोंका अपनेमें विकास कर श्रीराम-कृपा प्राप्त करनेका अधिकारी बनना। अतएव विशेष ध्यान श्रीरामके आदर्श चरित्रके अनुकरणपर ही रखना चाहिये। विधि इस प्रकार की जा सकती है—

१—चैत्र शुक्ला १ से चैत्र शुक्ला ९ तक नौ दिन उत्सव मनाया जाय।

२—प्रत्येक मनुष्य (स्त्री, पुरुष, बालक) प्रतिदिन अपनी रुचिके अनुसार श्रीरामके दो अक्षरी, पंचाक्षरी या चार अक्षरी* मन्त्रका नियमपूर्वक जप करे। पहले दिन नियम कर ले, उसीके अनुसार नौ दिनतक करते रहना चाहिये। कम-से-कम १०८ मन्त्रका जप प्रतिदिन हो जाना चाहिये। उत्साह और समय मिले तो नौ दिनमें नौ लाख नामका जप कर सकते हैं।

३—प्रतिदिन सुबह या शामको कुछ समयतक नियमितरूपसे श्रीराम-नामका कीर्तन हो।

४—श्रीरामायणका नौ दिनोंमें पूरा पाठ किया जाय। वाल्मीकि, अध्यात्म या श्रीगोसाईंजीकृत मानस, इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार किसी भी रामायणका पाठ कर सकते हैं। जो ऐसा न कर सकें वे कुछ समयतक प्रतिदिन रामायण पढ़ें या सुनें।

५—माता-पिताके चरणोंमें प्रतिदिन प्रातःकाल प्रणाम करें।

---

* 'राम', 'रामाय नमः' या 'सीताराम'।

६—यथासाध्य खूब सावधानीसे सत्य-भाषण करें (सच बोलें)।

७—घरमें माता, पिता, भाई, भौजाई, स्वामी, स्त्री, नौकर, मालिक सभी आपसमें प्रेम रखें, अपने अच्छे बर्तावसे सबको प्रसन्न रखें, किसीसे झगड़ा न करें।

८—ब्रह्मचर्यका पालन करें।

९—रामनवमीका व्रत करें।

१०—रामनवमीके दिन श्रीरामजन्मोत्सव मनाया जाय, श्रीराम-कथा हो, सभाएँ की जायँ, जिनमें रामायणका प्रवचन और रामायणसम्बन्धी शिक्षाप्रद व्याख्यान हों। कहने और सुननेवाले अपने अंदर श्रीरामके-से गुण लावें, इसके लिये दृढ़ निश्चय करें और श्रीरामसे प्रार्थना करें।

११—आपसके मेलमें बाधा न आती हो तो श्रीरामकी सवारीका जुलूस नगर-कीर्तनके साथ निकाला जाय।

इन ग्यारह बातोंमेंसे जिनसे जितनी पालन हो सकें, उतनी ही करनेकी चेष्टा करें, श्रीरामनामका जप, कीर्तन, माता-पिता आदिके चरणोंमें प्रणाम, सबसे प्रेम, ब्रह्मचर्यका अधिक-से-अधिक पालन, सत्य-भाषण आदि बातें तो जीवनभर पालन करनेयोग्य हैं। इनका अभ्यास अधिक-से-अधिक बढ़ाना चाहिये। श्रीरामकी भक्तिके लिये इन्हीं व्रतोंकी आवश्यकता है।

भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम

परात्पर, परब्रह्म लीलामय भगवान् श्रीरामने लंका-विजयके अनन्तर अयोध्याको लौटकर राज्याभिषेक हो जानेपर मुनि अगस्त्यके आदेशसे मानवलीलाकी मर्यादारक्षाके लिये रावणादि-वधजनित ब्रह्महत्यादोषकी निवृत्तिके उद्देश्यसे अश्वमेधयज्ञका समारम्भ किया। यज्ञका घोड़ा देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ देवपुर नामक नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा वीरमणिने घोड़ेको पकड़ लिया और दोनों सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। राजा वीरमणि शिवके अनन्य भक्त थे और परम दयालु शंकर अपने भक्तकी रक्षाके लिये सदा उसके नगरमें निवास करते थे। जब उन्होंने देखा कि वीरमणिकी सेना राघवी सेनाके चमूपति शत्रुघ्नके द्वारा पराभूत हो रही है और सैनिकोंका क्रमशः ह्रास हो रहा है, तब उन्होंने स्वयं रणांगणमें उपस्थित होकर शत्रुघ्नकी सेनाके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जब संहारमूर्ति भगवान् रुद्र क्रुद्ध होकर समरमें आ डटे, तब भला किसकी मजाल जो उनके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारको सह सके। बात-की-बातमें राघवी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और सैनिकोंमें हाहाकार मच गया। जब शत्रुघ्नने देखा कि भगवान् शंकरके बाणोंसे किसी प्रकार रक्षा नहीं है, तब उन्होंने कातर होकर श्रीकोशलाधीशका स्मरण किया और भगवान् उसी क्षण भक्तकी पुकार सुनकर यज्ञ-दीक्षाके वेषमें ही युद्धभूमिमें उपस्थित हो गये। भगवान्के भक्तभयहारी, सस्मित, वदनारविन्दका दर्शन कर राघवी सेनामें प्राण आ गये और सैनिकोंने जयघोषपूर्वक भगवान्का अभिनन्दन किया।

शंकरजीने अपने इष्टदेवको जब सामने आते देखा, तब तुरंत युद्ध बंद करके सम्मुख आये और प्रेमविह्वल होकर चरणोंमें गिर पड़े। भगवान्‌ने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया। भक्त और भगवान्‌के इस अपूर्व प्रेम-मिलनको देखकर सारी सेना मुग्ध हो गयी और लगी जय-जयकार करने। शंकरजी कुछ स्वस्थ होनेपर बोले—'प्रभो! आप प्रकृतिसे पर, साक्षात् परमेश्वर हैं, आप ही अपनी अंश-कलासे अखिल विश्वका सृजन, पालन और संहार करते हैं और स्वयं अरूप होते हुए भी मायासंवलित होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन रूपोंको धारण करते हैं। आपके लिये ब्रह्महत्यादोषके परिमार्जनके लिये अश्वमेधयज्ञका उपक्रम करना विडम्बनामात्र है। जिनके चरणोंसे निकली हुईं श्रीगंगाजी लोकमें पतितपावनी नामसे प्रसिद्ध हैं और मेरे सिरका भूषण हो रही हैं, जिनके नामके उच्चारणमात्रसे अजामिल-जैसे अनेकों महापातकी तर गये, उन्हें कभी ब्रह्महत्याका पाप लग सकता है? आपकी सारी क्रियाएँ संसारमें मर्यादा-स्थापनके लिये ही हैं, इसीलिये तो आपको 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहते हैं। नाथ! आपके कार्यमें विघ्न डालकर मैंने वास्तवमें महान् अपराध किया है, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। बात यह है कि मुझे सत्यके पाशमें बँधकर इच्छा न रहते हुए भी यह सब कुछ करना पड़ा। इसीलिये आपके प्रभावको जानते हुए भी आपकी सेनाके विरुद्ध खड़े होनेका अनुचित कार्य मैंने किया। इस राजाने प्राचीन कालमें उज्जयिनीमें महाकालके स्थानपर बड़ी उग्र तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर मैंने उसे एक वरदान दिया था। वह यह था कि जबतक अश्वमेधके प्रसंगमें मेरे इष्टदेव यहाँ न पधारें, तबतक मैं तुम्हारे नगरकी रक्षा करूँगा। बस, आज मेरा व्रत समाप्त हुआ। मैं वास्तवमें अपनी कृतिपर लज्जित हूँ। अब आप

कृपया मेरे इस भक्तको अपना दासानुदास समझकर अपनाइये और घोड़ेसहित इसके राज्य एवं सर्वस्वको अपनी सेवामें अंगीकार कीजिये।' यह कहकर भगवान् त्रिलोचनने राजा वीरमणिको पुत्र-पौत्रोंके सहित भगवान्के सम्मुख ला उपस्थित किया, उनके भवभयहारी चरणोंमें डाल दिया। देवतालोग जो विमानोंमें बैठे हुए यह अपूर्व दृश्य देख रहे थे, धन्य-धन्य, कहकर राजा वीरमणिके भाग्यकी सराहना करने और पुष्प बरसाने लगे।

भगवान् हँसकर बोले—'प्राणाधिक शंकर! भक्तकी रक्षा करके आपने भक्तकी मर्यादाकी ही रक्षा की है, इसमें अनुचित कौन-सी बात हुई, जिसके लिये आप इस प्रकार दीनभावसे क्षमा-याचना करते हैं? फिर आपसे तो अपराधकी शंका ही नहीं हो सकती, आप तो सदा मेरे हृदय-मन्दिरमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। वास्तवमें हम दोनोंमें कोई अन्तर ही नहीं है। जो मैं हूँ सो आप हैं और जो आप हैं सो मैं हूँ। हम दोनोंमें जो भेद समझता है वह मूर्ख और जडबुद्धि है। वह हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें घोर यातनाओंको सहता है। जो आपके भक्त हैं उन्हें सदासे ही मैं अपना भक्त समझता रहा हूँ और जो मेरे भक्त हैं वे अवश्य ही आपके भी दास हैं।'*

---

* ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिंकराः॥
(पद्म०, पा० २८। २०—२२)

इस प्रकार दोनों सेनाओंके विरोधको शान्त कर और शंकरके साथ अपना अभेद बताकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और श्रीशंकर भी अपने भक्तका कल्याण कर कैलासको चले गये (पद्मपुराण, पातालखण्डसे)।

'भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् शिव,' 'भगवान् विष्णुका स्वप्न', 'शिव-विष्णुका अलौकिक प्रेम' और 'भगवान् शिव और भगवान् श्रीराम'—इन लेखोंको पढ़नेसे यह निश्चय हो जाना चाहिये कि एक ही परम तत्त्वके ये सब लीला-भेदसे विभिन्न नाम-रूप हैं। इनमें स्वरूपतः भेद-कल्पना कभी नहीं करनी चाहिये।

भगवान् शिव और राम एक हैं

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि रामायणका यह कथन सर्वथा सत्य है कि शिवद्रोही रामभक्त अथवा रामद्रोही शिवभक्त नरकमें पड़ते हैं। साथ ही 'कल्याण' का वह लेख भी ठीक है, जिसमें एक देवताकी ही अनन्य उपासनापर जोर दिया गया है। इन दोनोंमें कोई विरोध नहीं है। केवल श्रीराम और श्रीशिवके प्रति विरोधका निषेध किया गया है। किसी एक स्वरूपकी उपासनाका यह अर्थ नहीं कि वह दूसरे स्वरूपसे द्रोह करे; क्योंकि दूसरे सभी स्वरूप भी उन्हीं भगवान्‌के हैं जिनकी वह उपासना करता है। यदि कोई हमारे एक पैरपर फूल चढ़ाये और दूसरेपर बर्छी मारे तो क्या हम उसपर प्रसन्न होंगे; एक सज्जन सरकारी अफसर भी हैं और ब्राह्मण भी हैं। अब कोई ब्राह्मण-स्वरूपकी पूजा करे और सरकारी अफसर-स्वरूपपर डंडा चलावे तो क्या इससे वे प्रसन्न होंगे? इसी प्रकार भगवान्‌के एक स्वरूपसे प्रेम और दूसरेसे वैर रखनेवाला वास्तवमें भगवान्‌से प्रेम करता ही नहीं। ऐसे प्रेमीके प्रेमसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते । अतः भगवान् विष्णु या शिवमेंसे किसी एकके प्रति अनन्य भक्ति रखते हुए भी दूसरेकी निन्दा नहीं करनी चाहिये; बल्कि यही समझना चाहिये कि वह भी मेरे ही भगवान्‌का रूप है। यही रामायण और 'कल्याण' का अभिप्राय है। शेष भगवत्कृपा।

श्रीराम तथा श्रीकृष्ण भगवान् हैं

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपका समूचा पत्र पढ़नेपर यह ज्ञात हुआ कि आप श्रीराम तथा श्रीकृष्ण आदि अवतारोंको भगवान् मानने या कहनेके विरोधी हैं। आपकी सबसे बड़ी युक्ति यह है कि 'श्रीकृष्ण और श्रीराम एक दिन जन्मे और मरे थे, किंतु ईश्वर कभी जन्मता-मरता नहीं।'

मैं पूछता हूँ, क्या आपने श्रीकृष्णके जन्म और मरणको अपनी आँखों देखा है? आप कहेंगे, 'नहीं'। तब आपने श्रीराम और श्रीकृष्णको कैसे जाना? रामायण तथा भागवत आदि सद्ग्रन्थोंद्वारा अथवा संत-महात्माओंद्वारा जाना। यदि यह बात है तो जिन ग्रन्थों या शास्त्रोंमें श्रीराम तथा श्रीकृष्णका चरित्र आया है, क्या उनमें उन्हें भगवान् नहीं माना गया है? यदि भगवान् माना गया है तो आपको भी मानना चाहिये। एक ही ग्रन्थकी एक ही विषयमें आधी बात तो आप मानें और आधी न मानें—यह कहाँका न्याय है?

यदि कहें कि 'जन्म-मरणके कारण मैं उनको नित्य नहीं मानता' तो इसपर इस प्रकारके विचारकी आवश्यकता है। क्या श्रीराम जिस प्रकार परमधाम पधारे थे, जिस प्रकार उनके साथ सारी अयोध्या चली गयी थी और जिस प्रकार वे अपने विष्णुरूपमें स्थित हुए थे, उसी प्रकारका महाप्रयाण साधारण जीवोंका भी होता है? कदापि नहीं। इसी प्रकार श्रीकृष्णके भी परमधाम-गमनका वृत्तान्त अलौकिक है। वे अपने उसी शरीरसे परमधाममें प्रतिष्ठित हुए। जन्म कालमें भी क्या साधारण मनुष्य उन्हींकी भाँति स्वतः चतुर्भुज रूपमें प्रकट हो जाते हैं? यदि नहीं, तो साधारण मनुष्योंके साथ उनकी तुलना कैसे की जा सकती

है? उनके जन्म-कर्म संसारी जीवोंकी अपेक्षा सर्वथा विलक्षण, सर्वथा उत्कृष्ट अलौकिक हैं। जो कार्य बड़े-से-बड़े देवता भी नहीं कर सके, वही उन्होंने अनायास कर दिखाया। उन श्रीराम या श्रीकृष्णको साधारण मनुष्य कहना या मानना अपनी अज्ञानताका परिचय देना है।

आप समझते हैं, श्रीराम और श्रीकृष्ण जन्मे और मरे; किन्तु श्रीराम और श्रीकृष्ण सनातन परमेश्वर ही हैं। उनका जन्म नहीं, आविर्भाव होता है; मरण नहीं, तिरोभाव होता है। सूर्य छिपता है, नष्ट नहीं होता। नष्ट होता तो दूसरे दिन कैसे दिखायी देता। इसी प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण अपने-अपने चिन्मय साकेत एवं गोलोकधाममें नित्य प्रतिष्ठित रहते हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे कभी-कभी इस धराधाममें अवतीर्ण या प्रकट होते हैं। फिर लीलाकार्य पूरा करके अन्तर्धान हो जाते हैं। यही कारण है कि आज भी वे अपने प्यारे भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। आपने श्रीरामचरितमानसकी कई चौपाईयाँ अपने मतलबके लिये उद्धृत की हैं। उन्हीं तुलसीदासजीने श्रीरामके विषयमें क्या विचार किया है, इसे भी कभी आपने देखा है? श्रीतुलसीदासजीको श्रीरघुनाथजीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया था, किंतु आप-जैसे महानुभाव इस बातपर विश्वास ही क्यों करेंगे।

जो हो, किसीके न माननेसे सत्यपर पर्दा नहीं पड़ता। किसीके न माननेसे सूर्यके प्रकाशपर अविश्वास नहीं किया जा सकता। श्रीराम और श्रीकृष्ण भगवान् परब्रह्म हैं, यही सिद्धान्त है। शेष सब भगवान्की दया है। यदि कोई कड़ी बात लिखी गयी हो तो कृपया क्षमा करेंगे।

श्रीहनुमान्‌जीकी योगशक्ति

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। आपकी शंका है कि 'हनुमान्‌जीने जब मशक-समान रूप धारण किया तो अँगूठी कहाँ रही?' वास्तवमें हनुमान्‌जीके महत्त्वको न जाननेसे ही मनमें इस तरहकी शंका पैदा होती है। जो हनुमान्‌जी अपने पर्वताकार शरीरको क्षणभरमें मच्छरके समान बना सकते हैं, वे उस अँगूठीको भी अपनी योगशक्तिसे इतनी छोटी कर सकते हैं कि मच्छर होनेपर भी उसे लिये रह सकें। क्या इतनी साधारण बात भी आपकी समझमें नहीं आती?

'श्रीरामेश्वर-स्थापना किस पण्डितने करायी'—इस प्रश्नके उत्तरमें निवेदन है कि रामदलमें विद्वानोंकी कमी नहीं थी। स्वयं हनुमान्‌जी 'नवव्याकरणार्थवेत्ता' थे; उन्होंने सूर्यदेवसे सब शास्त्रोंका अध्ययन किया था। सीताजी भी अव्यक्तरूपसे सदा भगवान्‌के साथ ही थीं, केवल स्थूल जगत्‌में अपहरणकी लीला चल रही थी; वह भी छायाकी। साक्षात् सीता तो पावकमें निवास करती थीं और पावक देवता सर्वत्र प्रकट हो सकते थे। फिर भी आप पण्डितका नाम तथा सीताकी उपस्थितिके विषयमें कुछ सुनना ही चाहते हैं तो सुनें—दन्तकथाओंमें सुनी हुई बात है, सम्भव है कहीं लिखी भी हो—'रामेश्वरजीकी स्थापना करानेके लिये स्वयं पण्डितप्रवर दशानन (रावण)-जी ही पधारे थे। स्थापनाका कार्य सुचारुरूपसे चलानेके लिये कुछ समयतकके लिये रावणने सीताजीको भी वहाँ उपस्थित कर दिया था।' सत्य क्या है, भगवान् जानें। शेष भगवत्कृपा।

वाल्मीकीय रामायणकी रचना

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१—स्त्री-जातिको 'अबला' इसलिये कहते हैं कि वह अपने बलका प्रदर्शन नहीं करती; पति-पुत्रोंकी मंगल-कामनासे वह प्रेममयी—स्नेहमयी बनी रहती है।

२—वाल्मीकीय रामायणके अनुसार वाल्मीकिजीने उस समय रामायणकी रचना आरम्भ की, जब श्रीरामचन्द्रजी वनसे लौटकर राजसिंहासनपर आसीन हो चुके थे। पद्मपुराणके अनुसार श्रीराम-जन्मके पहले रामायणकी रचना हो चुकी थी। ये दोनों ही बातें कल्पभेदसे ठीक हैं। महर्षि वाल्मीकि योग-शक्तिसे सम्पन्न थे। वे ध्यान लगाकर भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंकी बातें देख-जान सकते थे। शेष भगवत्कृपा।

श्रीराम-गुण-गान

[१]

(राग मालकोश—त्रिताल)

चित्र-विचित्र मण्डपोंसे है शोभित अवधपुरी रमणीय।
सर्वकाम सब सिद्धिप्रदायक उसमें कल्पवृक्ष कमनीय॥
उसके मूलभागमें शोभित परम मनोहर सिंहासन।
अति अमूल्य मरकत, सुवर्ण, नीलमसे निर्मित अतिशोभन॥
दिव्य कान्तिसे करता वह अति गहरे अन्धकारका नाश।
होता रहता उससे दुर्लभ विमल ज्ञानका सहज प्रकाश॥
उसपर समासीन जन-मनके मोहन राघवेन्द्र भगवान।
श्रीविग्रहका रंग हरित-द्युति-श्यामल दुर्वापत्र समान॥
उज्ज्वल आभासे आलोकित दिव्य सच्चिदानन्द-शरीर।
देवराज-पूजित हरता जो सत्वर जन-मनकी सब पीर॥
प्रभुके सुन्दर मुखमण्डलकी सुषमाका अतिशय विस्तार।
देता रहता जो राकाके पूर्ण सुधाधरको धिक्कार॥
उसकी अति कमनीय कान्ति भी लगती अति अपार फीकी।
राघवके वदनारविन्दकी अनुपम छबि विचित्र नीकी॥
लसित अष्टमीके शशांककी सुषमा तेजपुंज शुभ भाल।
काली घुँघराली अलकावलिकी सुन्दरता विशद विशाल॥
दिव्य मुकुटके मणि-रत्नोंकी रश्मि कर रही द्युति-विस्तार।
मकराकर कुण्डलोंका सौन्दर्य वर्णनातीत अपार॥
सुन्दर अरुण ओष्ठ विद्रुम-सम, दन्तपंक्ति शशि-किरण-समान।
अति शोभित जिह्वा ललाम अति जपापुष्प सम रंग सुभान॥

कम्बु-कंठ, जिसमें ऋक् आदिक वेद शास्त्र करते नित वास।
श्रीविग्रहकी शोभा वर्धित करते ये सब अंग-विलास॥
केहरि-कंधर-पुष्ट समुन्नत कंधे प्रभुके शोभाधाम।
भुज विशाल, जिनपर अति शोभित कंकण-केयूरादि ललाम॥
हीरा-जटित मुद्रिकाकी शोभा देदीप्यमान सब काल।
घुटनोंतक लंबे अति सुन्दर राघवेन्द्रके बाहु विशाल॥
विस्तृत वक्षःस्थल लक्ष्मी-निवाससे अतिशय शोभासार।
श्रीवत्सादि चिह्नसे अंकित परम मनोहर नित्य उदार॥
उदर रुचिर गम्भीर नाभि, अति सुन्दर सुषमामय कटिदेश।
मणिमय कांचीसे सुषमा श्रीअंगोंकी बढ़ रही विशेष॥
जंघा विमल, जानु अति सुन्दर, चरण-कमलकी कान्ति अपार।
अंकुश-यव-वज्रादि चिह्नसे अंकित तलुवे शोभागार॥
योगिध्येय श्रीराघवके श्रीविग्रहका जो करते ध्यान।
प्रतिदिन शुभ्र उपचारोंसे जो पूजन करते हैं मतिमान॥
वे प्रिय जन प्रभुके होते, नित उन्हें पूजते सब सुर-भूप।
दुर्लभ भक्ति प्राप्त करते वे राघवेन्द्रकी परम अनूप॥

[२]

(राग विहाग—तीन ताल)

शौर्य-वीर्य-ऐश्वर्य अतुल माधुर्य दिव्य सौन्दर्य-निधान।
नित्य सच्चिदानन्द दिव्य शुचितम गुणगण-सागर भगवान॥
धैर्य परम, गाम्भीर्य सरस, सौशील्य सहज, औदार्य महान।
शरणागत-वात्सल्य, साम्य, कारुण्य, स्थैर्य, चातुर्य अमान॥
सत्य, अहिंसा, मृदुता, आर्जव, ज्ञान, तेज, बल, बुद्धि ललाम।
नमस्कार पद-पद्मोंमें जो गुणनिधि अतुल राम-से राम॥

[३]

(राग भूपाल तोड़ी—तीन ताल)

रामचंद्र मुख-मंजु मनोहर भक्त-भ्रमर मन-हारक।
मंगल मूल मधुर मंजुल मृदु दिब्य सहज सुख-कारक॥
नित्य निरामय निर्मल अबिरल ललित कलित सुभ सोभित।
पाप-ताप-मद-मोह-हरन, मुनि-मन-सुचि-करन सुलोभित॥
नील स्याम-तनु, धनु कर सोहत, बरद हस्त भय नासत।
सुमन-माल-सुरभित, मुक्ता-मनि-हार लसत दुति भासत॥
पीत बसन सौंदर्य-सौर्य-निधि, भाल तिलक अति भ्राजत।
अखिल भुवनपति, सुषमा-श्री लखि, काम कोटि-सत लाजत॥

[४]

(राग खट—तीन ताल)

अतुल अनन्त अचिन्त्य सद्‌गुणोंके शुचितम शुभ आकर।
असुर दैत्य-तम-निशा-विनाशक रवि-कुल-कमल-दिवाकर॥
साधु-धर्म-संरक्षण-संबर्धन-हित नित्य धनुर्धर।
अखिल विश्वगत प्राणिमात्रके सहज समर्थ सुहृदवर॥
मात-पिता-गुरुभक्ति अनुत्तम भ्रातृ-स्नेह-रत्नाकर।
राम स्वयं भगवान अकारण-करुण भक्त-भव-भयहर॥

[५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मात-पिता-गुरु-भक्ति, एकपत्नीव्रत पावन।
भ्रातृप्रेम, शरणागतवत्सलता मनभावन॥
परम मधुर सौन्दर्य काम-शतकोटि-लजावन।
त्याग, शान्ति, वैराग्य, ज्ञान मुनि-चित्त लुभावन॥
शौर्य-नीति-बल-तेज शुचि उपजावत मन हर्ष है।
दुष्ट-दलन, सेवक-सुहृद राम परम आदर्श हैं॥

[६]

(राग बहार—ताल कहरवा)

जय श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न जयति, जय कपि हनुमान।
जय जानकी, माण्डवी, जय उर्मिला सती, श्रुतिकीर्ति महान॥
जयति आदिकवि वाल्मीकि, जय शंकर, जय कवि तुलसीदास।
रामायण-रचयिता धन्य, जय उमा कर रहीं बुद्धि-विकास॥

[७]

(राग नट—ताल मूल)

सीता-राम, उर्मिला-लक्ष्मण, माण्डवि-भरत मंगलाधार।
शुचि श्रुतिकीर्ति-शत्रुहन, गौरी-हर, भुशुण्डि, हनुमान उदार॥
आदि महाकवि वाल्मीकि मुनि, तुलसीदास भक्त सुखधाम।
अष्ट अष्टदल-मध्य सुशोभित, केन्द्र राम-सीता अभिराम॥
मंगलमय इनका जो करता श्रद्धायुत नित पूजन-ध्यान।
पाकर सीताराम-प्रेम वह बनता परम भक्त मतिमान॥

[८]

(राग ईमन)

मज्जन करि सुभ सरजु-तट ठाढ़े श्रीरघुबीर।
संग अनुज मुनि अमल मन, प्रभु भंजन भव-भीर॥
बपु नव-नीरद-नील सुचि, भुवनाभरन रसाल।
सुन्दर पीताम्बर बिसद भ्राजत उर मनि-माल॥
पुष्पहार मुनि-मन-हरन सुंदर सुषमा-ऐन।
बिकट भ्रुकुटि, चितवनि कुटिल, रस-मद-माते नैन॥
रूप-जलधि माधुर्य-निधि उपमा-बिरहित अंग।
रोम-रोम पर बारियै अगनित अजित अनंग॥

[९]

(राग माढ़)

राम-लखन नृप-सुअन दोउ राजत कौसिक संग।
रूप-सुधा-सौंदर्य-निधि उमगत अंग सुअंग॥
दामिनि-बारिद-बर-बरन, तेज-पुंज रस-रंग।
नख-सिख सुंदर निरखि छबि मोहे अमित अनंग॥
धनु-सर कर, केहरि-ठवनि, कटि पटपीत-निषंग।
मुनि मख-राखन, भय-हरन, बिरमत सदा असंग॥
बिकट कुटिल मारीच मति नीच सुबाहु भुअंग।
उभय जीति, मुनि जग्य कौं सफल कर्‌यो सब अंग॥

[१०]

(राग पूर्वी—ताल त्रिताल)

अति प्रसन्न-मन जनकराजने विधिवत् कर सारे आचार।
चारों कन्याएँ कीं अर्पण, चारोंको शुचि सालंकार॥
रामभद्रको सीता दी, दी लक्ष्मणको उर्मिला अमन्द।
दी माण्डवी भरतको, दी श्रुतिकीर्ति शत्रुहनको सानन्द॥
ऋषियोंने सविधान कराया चारोंका विवाह-संस्कार।
जनकपुरीमें, सारे जगमें ही छाया आनन्द अपार॥

[११]

(राग पूरिया—तीन ताल)

प्रभु! मैं नहिं नाव चलावौं।
तव पद-रज नर-करनि मूरि प्रभु!
महिमा अमित कहाँ लगि गावौं।
पाहन छुअत नारि भइ पावनि,
काठ पुरातन की यह नावौं।

परसत रज मुनि-नारि बनै यह,
मैं पुनि असि नौका कहँ पावौं॥
मैं अति दीन-दरिद्र, कुटुँब बहु,
यहि नौका तें सबहिं निभावौं।
जो यह उड़ै, जीविका बिनसै,
केहि बिधि पुनि परिवार चलावौं॥
अनुमति होइ तो लेइ कठौता,
सुरसरि-जल भरि प्रभु पहँ लावौं।
पद पखारि, रज धोइ भली बिधि,
करि चरनामृत पाप नसावौं॥
प्रभु-चरनन की सपथ नाथ! मैं,
अन्य भाँति नहिं नाव चढ़ावौं।
लखन रिसाइ तीर जो मारैं,
निबल, पकरि पद प्रान गवावौं॥
प्रेम भरे, अति सरल सुहावन,
अटपट बचन सुने रघुरावौं।
करुना-निधि हँसि अनुमति दीन्ही,
केवट कह्यो पार लै जावौं॥

[१२]

(राग हमीर—तीन ताल)

प्रभु बोले मुसुकाई।
जातें तोरि नाव रहि जावै, सोइ जतन करु भाई॥
पाँव पखारु, लाइ गंगाजल, अब मत बिलँब लगाई।
सुनत बचन तेहि छिन सो दौर्‌यौ, मन महँ अति हरषाई॥

भर्‌यो कठौता गंगाजल सों सब परिवार बुलाई।
प्रभु-पद आइ पखारन लाग्यौ, उर आनँद न समाई॥
सुरन बिलोकि प्रेम-करुना अति, नभ दुंदुभी बजाई।
केवट भाग्य सराहि अमित बिधि, सुमन-बृष्टि झरि लाई॥
पद पखारि, सब लै चरनामृत, पुरुखन पार लँघाई।
सीता-लखन सहित रघुनंदन, हरषित नाव चलाई॥

[१३]

(राग प्रदीप—तीन ताल)

मधुर मृदु सुंदर राजकुमार॥
स्यामल-गौर किसोर बंधु दोउ सुचि सुषमा-आगार।
कटि तूनीर, तीर-धनु कर महँ धीर बीर सकुमार॥
जटा-जूट-मंडित, मुनि पट, उर-बाहु बिसाल उदार।
चले जात पथ, पग बिनु पनही रूप-सील-भंडार॥
उभय मध्य राजति श्रीजानकि सोभामई अपार।
अति निर्मल देखत मन उमगत श्रद्धा-सरिता-धार॥
बूझति पिय सौं चकित, कथा बन की करि, हृदय बिचार।
हेरि-हेरि सिय-तनु समुझावत प्रिया, भरे हिय प्यार॥
लखन सकुचि सोचत सिय-हिय की बात, न पावत पार।
धन्य ते, जिन निरखे इनहीं, भरि नैन सकल सुख-सार॥

[१४]

(राग गौड़ सारंग—तीन ताल)

लक्ष्मण अनुज सती सीता सह मर्यादा-पुरुषोत्तम राम।
पिता-वचनका पालन करते वन-वन विचर रहे अभिराम॥

कभी पर्वतारोहण करते, कभी उतर करते विश्राम।
शुभ मर्यादा-लीला करते लीलामय आदर्श ललाम॥

[१५]

(राग देश)

चरन-पादुका नेह सों पूजत नित अभिराम।
राम-प्रेम-मूरति भरत निवसत नंदीग्राम॥
मन अखंड स्मृति राम की, जीभ राम कौ नाम।
राजत कर जप-माल सुचि, तजे भोग सब काम॥

[१६]

(राग मधुवती—तीन ताल)

सहित सहस्र चतुर्दश राक्षसगणके, जो थे पापाचार।
धर्मद्वेषी खरदूषणका महासमरमें कर संहार॥
बैठे रामभद्र; मुनियोंने आकर किया समुद सत्कार।
परम प्रशंसा कर सब करने लगे चतुर्दिक जय-जयकार॥
लगे बजाने देव दुन्दुभी अन्तरिक्षमें बारम्बार।
रामचन्द्रका अद्‌भुत अत्याश्चर्यपूर्ण यह कर्म निहार॥

[१७]

(राग पीलू—ताल दीपचंदी)

विप्रवेशधारी वैश्वानर आये प्रभुके पास।
विनय-विनम्र बचन बोले मुखपर छाया मृदु हास॥
नाथ! आपकी लीला अब लायेगी नूतन रंग।
सीता-हरण करेगा रावण खूब मचेगा जंग॥

अतः जगज्जननी सीताकी सेवाका सब भार।
मुझे सौंप इन छाया-सीताको करिये स्वीकार॥
लीला-बध जब कर रावणका कर देंगे उद्धार।
तब मैं इन्हें सौंप दूँगा सादर लाकर सरकार॥
दुःख हुआ यद्यपि प्रभुको ली बात किंतु यह मान।
हुआ नहीं लक्ष्मणको भी इस गुप्त भेदका ज्ञान॥

[१८]

(राग हमीर—तीन ताल)

मधुर सु-सेवासे प्रसन्न हो शबरीसे बोले श्रीराम।
भद्रे! शुचि शुश्रूषा की, अब जाओ निज अभीष्ट हरि-धाम॥
आज्ञा पा, शबरीने जलते पावकमें जब किया प्रवेश।
दिव्य अग्नि-सम देह प्राप्तकर तेजस्वी-धर पावन वेश॥
वसन, हार, आभूषण, अनुलेपन सब दिव्य परम तन धार।
विद्युत्-द्युति दमकाती पहुँची दिव्य धाम, तमके उस पार॥

[१९]

(राग कलावती—ताल धुमाली)

'ओजस्वी सौमित्रि करो तुम क्षमा हमारे सारे दोष।'
मदको त्याग, तोड़ मालाको, बोले कपिपति—'छोड़ो रोष॥
रामकृपासे ही पाया मैंने श्री, कीर्ति, राज्य सर्वस्व।
राघवके उपकार अमितका क्या मैं बदला दूँ निस्सत्त्व॥
होगा प्रभुकी महिमासे ही रावण-वध, सीता-उद्धार।
मैं नगण्य भी पाऊँगा सेवाका शुचि सौभाग्य अपार'॥
ताराने भी मधुर नम्र बचनोंसे स्थितिका किया बखान।
मृदु-स्वभाव लक्ष्मणने हो संतुष्ट किया तत्क्षण प्रस्थान॥

[२०]

(राग देश)

सीता अति कृस गात, सुमिरत मन रघुबंस-मनि।
आयहु मन इतरात, दसमुख मंदोदरि सहित॥
अधम निलज्ज अपार, कहे बचन निंदित अमित।
सीता दै फटकार, बोली—'चुप रहु नीच! खल'॥
रावन कर अति क्रोध, कर अति कठिन कृपान लै।
धायहु असुर अबोध, सीतहि मारन मंद-मति॥
मयतनया धरि हाथ, अति बिनीत कहि नीति सुचि।
गई लेइ निज साथ, कोह-मोह-रत रावनहिं॥

[२१]

(राग हंसध्वनि—तीन ताल)

सीताका कर हरण दुष्ट रावण जब लंकामें लाया।
दिये प्रलोभन अमित, विविध विधिसे फुसलाया, समझाया॥
क्रोधातुर हो सती जानकीने जब उसको फटकारा।
रखकर सीताको अशोक-वन, लौट गया वह मन-मारा॥
जगज्जननि जानकिको जब सुरपतिने देखा दुःख-अधीर।
अति दुःखित हो, चरु लेकर जब आये, शुचि शचिपति सुर-वीर॥
आश्वासन दे, कहा—'जननि! रावणका कर सवंश संहार।
विजयी हो रघुवर, तुमको ले जायेंगे निज संग उदार॥
कुछ दिन धीरज धरो, करो अनुचरकी यह सेवा स्वीकार।
दिव्य देव-हवि-अन्न ग्रहणकर क्षुधा-तृषासे पाओ पार॥
भूख-प्यासकी बाधा मैया! कभी न होगी तुमको अब।'
सीताने सुरपतिको जब पहचाना, लिया दिव्य चरु तब॥

माताकी शुभ आशिष पाकर सुखसे लौट गये सुरराज।
धन्य वही, जिसका तन-मन-धन लगता सदा रामके काज॥

[२२]

(राग हंसनारायणी—तीन ताल)

'पता लगाकर सीताका खुद मिलकर हैं आये हनुमान।
मेरे, लक्ष्मणके, रघुकुलके रक्षक परम महाबलवान॥
वस्तु न मेरे पास योग्य, दूँ जिसको इन्हें आज उपहार।
ऋणसे मुक्त हो नहीं सकता मैं कदापि, कर चुका विचार॥
आज इस समय मैं देता हूँ इनको बस, आलिंगन-दान।
मेरा यह सर्वस्व, महात्मा इससे हों प्रसन्न हनुमान'॥
(यों कह—) पुलकित हुए अंग सब, उमड़ा राघवके मन प्रेम अनन्य।
किया कृतात्मा सेवकको दे गाढालिंगन प्रभुने धन्य॥

[२३]

(राग तैलंग—तीन ताल)

रिपु रन जीति राम घर आए।
लषन-सीय-कपि-रीछ-सहित प्रभु कुसल, अवध आनंद बधाए॥
नगर छयो आनंद-कुलाहल, हाट-बाट-घर सबनि सजाए।
लगे बाजने वाजन चहूँ दिसि, मुदित नारि-नर देखन धाए॥
उतरि बिमान भए सब ठाढ़े, अमित रूप निज राम बनाए।
जथाजोग मिलि राम सबनि तें सबके मन अति मोद बढ़ाए॥

[२४]

(राग नायकी—ताल मूल)

नील कमल, नव-नील-नीरधर, नील मनोहर मरकत स्याम।
राज-राज-मनि-मुकुट कोटि-कंदर्प-दर्प-हर सोभा-धाम॥

राजत रत्न-रचित सिंहासन, भ्राजत सिर मनि-मुकुट ललाम।
अंग-अंग सुचि सुषमा-सागर मुनि-मन-हर लोचन अभिराम॥
बरद हस्त-मुद्रा महिमामय भक्त-कल्पतरु पूरन काम।
जनकनंदिनी सहित सुसोभित सुख-दायक रघुनायक राम॥

[२५]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

गो-द्विज-रक्षा-हेतु रामने लिया दिव्य मानव-अवतार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु यज्ञकी रक्षा की बन पहरेदार॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया उस शिला-अहल्याका उद्धार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु प्रफुल्लित-मन, वन-गमन किया स्वीकार॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु लिया श्रीसीता-लक्ष्मणको निज साथ॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु तपस्वी बन वन-वन विचरे रघुनाथ।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु कराया सीता-हरण असुरके हाथ।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु बँधाया पत्थर-पुल रोका निधि-पाथ॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया रघुबरने लंका-दुर्ग-प्रवेश।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया दुर्धर्ष असुर-दलको निःशेष॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु इन्द्रजित-रावणका कर जीवन शेष।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु बनाया भक्त विभीषणको लंकेश॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु मिटाकर अनाचार सब अत्याचार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु विविध शुचि मर्यादाका कर विस्तार॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया प्रस्थापित राम-राज्य शुभ-सार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु पुण्यमय फैलाया सुख विविध प्रकार॥

[२६]

(राग रागेश्वरी—तीन ताल)

ध्यानमग्न हनुमान नाचते गाते राम-नाम अविराम।
जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम॥
जय रघुनायक, जय सुखदायक, जय वरदायक, जय सियाराम।
जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम॥

[२७]

(राग कामोद—तीन ताल)

कांचनाद्रि-कमनीय कलेवर कदली-बन राजत अभिराम।
हेम-मुकुट सिर, भूषण भूषित; अर्ध-निमीलित नेत्र ललाम॥
वरद पाणि वपु, ध्यानमग्न मन, भक्त-कल्पतरु, नित्य निकाम।
राघवेन्द्र-सीता-प्रिय-सेवक मन-मुख सदा जपत सियाराम॥

[२८]

आरती भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम

आरति कीजै श्रीरघुबर की।
सत चित आनँद शिव सुन्दर की॥ टेक॥
दशरथ-तनय कौसिला-नन्दन,
सुर-मुनि-रक्षक दैत्य-निकन्दन,
अनुगत-भक्त भक्त-उर-चन्दन,
मर्यादा-पुरुषोत्तम-वर की॥
निर्गुण-सगुण, अरूप-रूपनिधि,
सकल लोक-वन्दित विभिन्न विधि,
हरण शोक-भय, दायक सब सिधि,
मायारहित दिव्य नर-वर की॥

जानकिपति सुराधिपति जगपति,
अखिल लोक पालक त्रिलोक-गति,
विश्ववन्द्य अनवद्य अमित-मति,
एकमात्र गति सचराचर की॥
शरणागत-वत्सल-व्रतधारी,
भक्त-कल्पतरु-वर असुरारी,
नाम लेत जग-पावनकारी,
वानर-सखा-दीन-दुख-हर की॥

[२९]

आरती श्रीजानकीजी

आरति श्रीजनक-दुलारी की।
सीताजी रघुबर-प्यारी की॥ टेक॥
जगत-जननि जगकी विस्तारिणि,
नित्य सत्य साकेत-बिहारिणि,
परम दयामयि दीनोद्धारिणि,
मैया भक्तन-हितकारी की॥ सीताजी०॥
सती-शिरोमणि, पति-हित-कारिणि,
पति-सेवा हित वन-वन-चारिणि,
पति-हित पति-वियोग-स्वीकारिणि,
त्याग-धर्म-मूरति-धारी की॥ सीताजी०॥
बिमल-कीर्ति सब लोकन छायी,
नाम लेत पावन मति आयी,
सुमिरत कटत कष्ट दुखदायी,
शरणागत-जन-भय-हारी की॥ सीताजी०॥

[३०]

आरती श्रीअंजनीकुमारजी

आरति श्रीअंजनिकुमारकी।

शिवस्वरूप मारुतनन्दन, केसरी-सुअन कलियुग-कुठार की॥

हियमें राम-सीय नित राखत, मुखसों राम-नाम-गुण भाखत,
सुमधुर भक्ति-प्रेम-रस चाखत, मंगलकर मंगलाकार की
॥ आरति० ॥

विस्मृत-बल-पौरुष, अतुलित बल, दहन दनुज-वन-हित, दावानल,
ज्ञानि-मुकुट-मणि, पूर्ण गुण सकल, मंजु भूमि शुभसदाचार की
॥ आरति० ॥

मन-इन्द्रिय-विजयी, विशाल मति, कलानिधान, निपुण गायक अति,
छन्द-व्याकरण-शास्त्र अमित गति, रामभक्त अतिशय उदार की
॥ आरति० ॥

पावन परम सुभक्ति-प्रदायक, शरणागतको सब सुख-दायक,
विजयी वानर-सेना-नायक, सुगति-पोतके कर्णधार की
॥ आरति० ॥

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)
050	पदरत्नाकर
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन
058	अमृत-कण
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
333	सुख-शान्तिका मार्ग
343	मधुर
056	मानव-जीवनका लक्ष्य
331	सुखी बननेके उपाय
334	व्यवहार और परमार्थ
514	दुःखमें भगवत्कृपा
386	सत्संग-सुधा
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल
347	तुलसीदल
339	सत्संगके बिखरे मोती
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति
350	साधकोंका सहारा
351	भगवच्चर्चा
352	पूर्ण समर्पण
353	लोक-परलोक-सुधार
354	आनन्दका स्वरूप

कोड	पुस्तक
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
356	शान्ति कैसे मिले?
357	दुःख क्यों होते हैं ?
348	नैवेद्य
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
336	नारीशिक्षा
340	श्रीरामचिन्तन
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
345	भवरोगकी रामबाण दवा
346	सुखी बनो
341	प्रेमदर्शन
358	कल्याण-कुंज
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
361	मानव-कल्याणके साधन
362	दिव्य सुखकी सरिता
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
364	परमार्थकी मन्दाकिनी
366	मानव-धर्म
526	महाभाव-कल्लोलिनी
367	दैनिक कल्याण-सूत्र
369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष	381	दीन-दु:खियोंके प्रति कर्तव्य
370	श्रीभगवन्नाम	379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
373	कल्याणकारी आचरण	382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
374	साधन-पथ—सचित्र	344	उपनिषदोंके चौदह रत्न
375	वर्तमान शिक्षा	371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	384	विवाहमें दहेज—
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय	809	दिव्य संदेश..........
378	आनन्दकी लहरें		
380	ब्रह्मचर्य		

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	1214	मानस-स्तुति-संग्रह
819	श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य	1344	सचित्र-आरती-संग्रह
207	रामस्तवराज—(सटीक)	1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	208	सीतारामभजन
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
231	रामरक्षास्तोत्रम्	225	गजेन्द्रमोक्ष
1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	1505	भीष्मस्तवराज
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	699	गंगालहरी
054	भजन-संग्रह	1094	हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	228	शिवचालीसा
142	चेतावनी-पद-संग्रह	232	श्रीरामगीता
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	851	दुर्गाचालीसा
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	236	साधकदैनन्दिनी